ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्री मद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्राऽऽदिमं ब्रह्मखण्डम्

अथ प्रथमोध्यायः

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः ।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च यं नमन्ति देव्यः प्रणमामि तं विभुम् ॥१॥
स्थूलास्तनूर्विदधतं त्रिगुणं विराजं विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम्[1] ।
सृष्टयुन्मुखः स्वकलयाऽपि ससर्ज सूक्ष्मं नित्यं समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि ॥२॥
ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुरनरमनवो योगिनो योगरूढाः
सन्तः स्वप्नेऽपि[2] सन्तं कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तप्त्वा[3] ।

अध्याय १

मंगलाचरण, ब्रह्मवैवर्तपुराण का परिचय तथा महत्त्व

गणेश, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, शेषनाग, देवता, समस्त मनु, मुनिवर, सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती आदि देवियाँ जिनको नमस्कार करती हैं, उन व्यापक परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१॥ जो स्थूल शरीरों का धारण करने वाले, त्रिगुणात्मक, विराट्स्वरूप, अपने लोमकूपों में अनेक विश्वों को निहित करने वाले, महान्, आदिपुरुष, सृष्टि करने में प्रवृत्त होने पर अपनी कला से भी सृष्टि-रचना करने वाले तथा सूक्ष्म रूप से सदा (सब के) हृदय में रहने वाले हैं, उन अजन्मा ब्रह्म का मैं भजन करता हूँ॥२॥ देवता, मनुष्य तथा मनु ध्याननिष्ठ

---

१. क. माद्यः। २. क. स्वप्नोन्मिषन्तं। ३. क. तप्ताः।

ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं
भक्त्या ध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूपं दधानम् ॥३॥
वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः ।
आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥४॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। ([1]ॐ नमः सर्वलोकविघ्नविनायकाय ।
ॐ नमो ब्रह्मणे। ॐनमः शिवाय। ॐ नमो गणपतये। ॐ नमो नारदाय ।
ॐ नमो व्यासाय । ॐ नमः प्रकृत्यै)।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
अमृतपरमपूर्वं भारतीकामधेनुं श्रुतिगणकृतवत्सो व्यासदेवो दुदोह ।
अतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्तमेतत्पिबत पिबत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम् ॥२॥
भारते नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः । नित्यां नैमित्तिकीं कृत्वा क्रियामूषुः कुशासने ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यदृच्छया । प्रणतं सुविनीतं तं विलोक्य ददुरासनम् ॥४॥
तं संपूज्यातिथिं भक्त्या शौनको मुनिपुंगवः । पप्रच्छ कुशलं शान्तं शान्तः पौराणिकं मुदा ॥५॥
वर्त्मायासविनिर्मुक्तं वसन्तं सुस्थिरासने । सस्मितं सर्वतत्त्वज्ञं पुराणानां पुराणवित् ॥६॥
परं [2]कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसंमतम्[3] । मङ्गलं मङ्गलार्हं च मङ्गल्यं मङ्गलालयम् ॥७॥

होकर और योगी लोग योगारूढ़ होकर जिनका ध्यान करते हैं एवं कतिपय साधक कई जन्मों तक तपस्या करके भी स्वप्न में भी जिनको नहीं देख पाते हैं, उन, भक्त पुरुषों के ध्यान के लिए अनुपम सुन्दर तथा श्याम रूप धारण करने वाले भगवान् का मैं ध्यान करता हूँ॥३॥ जिनसे प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि प्रकट हुए हैं, उन त्रिगुणातीत परब्रह्म श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ॥४॥

भगवान् वासुदेव को नमस्कार है। ओं नमो भगवते वासुदेवाय (भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वती देवी को नमस्कार करके जय बोले (अर्थात् इतिहास-पुराण का पाठ करे) ॥१॥ सरस्वती को कामधेनु तथा वेदों को बछड़ा बना कर व्यासदेव ने अत्यन्त मनोरम ब्रह्मवैवर्तपुराण रूप अपूर्व अमृत का दोहन किया है। सज्जनो! इस अक्षय्य दुग्ध का यथेच्छ पान करो॥२॥ भारतवर्ष के नैमिषारण्य (तीर्थ) में शौनक आदि ऋषि नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं का अनुष्ठान करके कुशासन पर बैठे हुए थे। इसी बीच सूत-पुत्र (उग्रश्रवा) को अकस्मात् (वहाँ) आते हुए तथा विनीत भाव से (सबको) प्रणाम करते हुए देख कर ऋषियों ने उन्हें आसन दिया। उस अतिथि की भक्तिपूर्वक पूजा करके मुनिवर शान्त शौनक ने उस शान्त पौराणिक (सूत) से हर्षपूर्वक कुशल-समाचार पूछा। मार्ग की थकावट से रहित होकर सुस्थिर आसन पर बैठे हुए, मुसकराते हुए, पुराणों के सकल तत्त्वों के ज्ञाता तथा परम विनीत सूत से आकाश में तारों के बीच चन्द्रमा की

---

१ अयं पाठः ख. पुस्तके नास्ति। २. क.० ष्णवरोपे०। ३. क. ०तिसुन्दरम्।

सर्वमङ्गलबीजं च सर्वदा मङ्गलप्रदम्। सर्वामङ्गलनिघ्नं[1] च सर्वसंपत्करं परम्॥८॥
हरिभक्तिप्रदं शश्वत्सुखदं मोक्षदं भवेत्। तत्त्वज्ञानप्रदं दारपुत्रपौत्रविवर्धनम्॥९॥
पप्रच्छ [2]सुविनीतं च सुप्रीतो मुनिसंसदि। यथाऽऽकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते॥१०॥

शौनक उवाच

प्रस्थानं भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम्। किमस्माकं पुण्यदिनमद्य त्वद्दर्शनेन च॥११॥
वयमेव कलौ भीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः। मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वमिहागतः॥१२॥
भवान्साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित्। सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः॥१३॥
श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती। तत्कथ्यतां महाभाग पुराणं ज्ञानवर्धनम्॥१४॥
गरीयसी या साक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी। संसारसंनिबद्धानां निगडच्छेदकर्तरी॥१५॥
भवदावाग्निदग्धानां पीयूषवृष्टिवर्षिणी। सुखदाऽऽनन्ददा सौते शश्वच्चेतसि जीविनाम्॥१६॥
यत्राऽऽदौ सर्वबीजं च परब्रह्मनिरूपणम्। तस्य सृष्टयुन्मुखस्यापि सृष्टेरुत्कीर्तनं परम्॥१७॥
साकारं वा निराकारं परमात्मस्वरूपकम्। किमाकारं च तद्ब्रह्म तद्ध्यानं किं च भावनम्॥१८॥

भाँति मुनि-सभा में शोभा पाने वाले पुराणवेत्ता सुप्रसन्न शौनक ने ऐसे पुराण के विषय में प्रश्न किया, जो परम उत्तम, श्रीकृष्ण की कथा से युक्त, सुनने में सुन्दर एवं सुखद, मंगलमय, मंगलयोग्य, मंगलयुक्त, मंगलधाम, सकल मंगलों का बीज, सर्वदा मंगलदायक, समस्त अमंगलों का नाशक, निखिल सम्पत्तियों की प्राप्ति कराने वाला, श्रेष्ठ, हरिभक्तिदायक, सदा सुख एवं मोक्ष देने वाला, तत्त्वज्ञान देने वाला और स्त्री, पुत्र एवं पौत्रों की वृद्धि करने वाला हो॥३-१०॥

शौनक ने पूछा—आपने कहाँ के लिए प्रस्थान किया है? कहाँ से आये हैं? आपका कल्याण हो। आज आपके दर्शन से हमारा दिन कैसा पुण्यमय हो गया है। हम सभी लोग कलियुग में भयभीत हैं, विशिष्ट ज्ञान से शून्य हैं, संसार में डूबे हुए हैं और मोक्ष के अभिलाषी हैं। इसी कारण आप यहाँ पधारे हैं। आप सज्जन, महाभाग्यवान्, पुराणों के वेत्ता; समस्त पुराणों में निष्णात तथा महान् कृपानिधान हैं। महाभाग! आप (कोई) ऐसा ज्ञानवर्धक पुराण बताइए जिससे श्रीकृष्ण में निश्चल एवं नित्य भक्ति प्राप्त हो। क्योंकि हे सूतपुत्र! श्रीकृष्ण की भक्ति मोक्ष से भी श्रेष्ठ, कर्म का मूलोच्छेद करने वाली, संसार में बँधे हुए जीवों का बन्धन काटने वाली, जगत् रूपी दावानलों से दग्ध हुए जीवों पर अमृत-वर्षा करने वाली तथा प्राणियों के हृदय में नित्य-निरन्तर सुख एवं आनन्द देने वाली है॥११-१६॥

(आप ऐसा पुराण सुनाइए), जिसके आदिम भाग में सबके बीज (कारणतत्त्व) का प्रतिपादन और परब्रह्म का निरूपण हो। सृष्टि के लिए प्रवृत्त हुए उस (परमात्मा) की सृष्टि का भी उत्तम वर्णन हो। (हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि) परमात्मा का स्वरूप साकार है या निराकार? उस ब्रह्म का स्वरूप क्या है? उसका

---

१ क. ०लविघ्नं। २ क. सुमहाभागो विनी।

ध्यायन्ते वैष्णवाः किं वा शान्ताश्च योगिनस्तथा। मतं प्रधानं केषां वा गूढं वेदे निरूपितम् ॥१९॥
प्रकृतेश्च[१] य आकारो यत्र वत्स निरूपितः। गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश्च निश्चयः ॥२०॥
गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम्। वर्णनं शिवलोकस्य यत्रान्यत्स्वर्गवर्णनम् ॥२१॥
अंशानां च कलानां च यत्र सौते निरूपणम्। के प्राकृताः का प्रकृतिः क आत्मा प्रकृतेः परः ॥२२॥
निगूढं जन्म येषां वा देवानां देवयोषिताम्। समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरितामपि ॥२३॥
के वांऽशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः। तासां च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम् ॥२४॥
दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणां च वर्णनम्। यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुधोपमम् ॥२५॥
जीवकर्मविपाकश्च नरकाणां च वर्णनम्। कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम् ॥२६॥
येषां च जीविनां यद्यत्स्थानं यत्र शुभाशुभम्। जीविनां कर्मणो यस्माद्यासु यासु च योनिषु ॥२७॥
जीवानां कर्मणो यस्माद्यो यो रोगो भवेदिह। मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषां च तन्निरूपय ॥२८॥
मनसा तुलसी काली गङ्गा पृथ्वी वसुंधरा। आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र वै ॥२९॥
शालग्रामशिलानां च दानानां च निरूपणम्। अपूर्वं यत्र वा सौते धर्माधर्मनिरूपणम् ॥३०॥
गणेश्वरस्य[२] चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च। कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णनम् ॥३१॥

ध्यान और चिन्तन कैसे किया जाय? वैष्णव या शान्त योगी जन किसका ध्यान करते हैं? वेद में किनके प्रधान या गूढ़ मत का निरूपण हुआ है? ॥१७-१९॥

वत्स! जिस पुराण में प्रकृति के स्वरूप का निरूपण हुआ हो, गुणों का लक्षण (बताया गया हो) 'महत्' आदि का निर्णय किया गया हो, गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक तथा स्वर्गों का वर्णन हो और अंशों एवं कलाओं का निरूपण हो, वह हमें सुनाइए। सूतनन्दन! प्राकृत पदार्थ कौन हैं? प्रकृति कौन है? और प्रकृति से परे आत्मा कौन है? जिन देवों और देवांगनाओं का जन्म (पृथ्वी पर) गूढ़ रूप से हुआ है, उनके विषय में तथा समुद्रों, पर्वतों और नदियों की उत्पत्ति के विषय में भी हमें बताइए। प्रकृति के अंश कौन हैं? कलायें कौन हैं? कलाओं की कलायें कौन हैं? उनके चरित्र, ध्यान, पूजन तथा पवित्र स्तोत्र आदि जिस पुराण में वर्णित हों, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी तथा सावित्री का वर्णन जिसमें हो, राधिका का अत्यन्त अपूर्व तथा अमृतोपम आख्यान जिसमें हो, जीवों के कर्म-फल तथा नरकों का वर्णन जिसमें हो, कर्मों का खण्डन तथा उनसे मुक्ति पाने का उपाय जिसमें प्रतिपादित हो, वह हमें बताइए। जीवधारियों को जहाँ जो शुभ या अशुभ स्थान प्राप्त होता हो उन्हें जिन कर्मों से जिन योनियों में जाना पड़ता हो, जिन कर्मों से जो रोग होते हों तथा जिन कर्मों से मोक्ष मिलता हो, उनका प्रतिपादन कीजिए॥२०-२८॥

सूतपुत्र! जिस पुराण में मनसा, तुलसी, काली, गंगा और वसुन्धरा पृथ्वी—इनका तथा अन्य देवियों का भी पवित्र आख्यान हो, शालग्राम शिलाओं तथा दानों का निरूपण हो, धर्म और अधर्म का अपूर्व निरूपण हो, गणपति के चरित्र, जन्म, कर्म, गूढ़ कवच, स्तोत्र तथा मन्त्रों का वर्णन हो तथा जो उपाख्यान पहले न सुना गया हो

---

१ क. श्च ०किमाका०। २ क. स्य देवस्य उत्पत्तिर्ज०।

**यदपूर्वमुपाख्यानमश्रुतं परमाद्भुतम्। कृत्वा मनसि तत्सर्वं सांप्रतं वक्तुमर्हसि॥३२॥
यत्र जन्मभ्रमो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते। परिपूर्णतमस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः॥३३॥
जन्म कस्य गृहे लब्धं पुण्ये पुण्यवतो मुने। सुतं प्रसूता का धन्या मान्या पुण्यवती सती॥३४॥
आविर्भूय च तद्गेहात्क्व गतः केन हेतुना। गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः॥३५॥
भारावतरणं केन प्रार्थितो गोश्चकार सः। विधाय किंवा सेतुं च गोलोकं गतवान्पुनः॥३६॥
इतीदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम्। दुर्विज्ञेयं मुनीनां च मनोनिर्मलकारणम्॥३७॥
स्वज्ञानाद्यन्मया पृष्टमपृष्टं वा शुभाशुभम्। सद्यो वैराग्यजननं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥३८॥
शिष्यपृष्टमपृष्टं वा व्याख्यानं कुरुते च यः। स सद्गुरुः सतां श्रेष्ठो योग्यायोग्ये च यः समः॥३९॥**

सौतिरुवाच

**सर्वं कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात्। सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम्॥४०॥
दृष्ट्वा विप्रसमूहं च नमस्कर्तुमिहागतः। द्रष्टुं च नैमिषारण्यं पुण्यदं चापि भारते॥४१॥
देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद्यस्तु संभ्रमात्। स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥४२॥
हरिर्ब्राह्मणरूपेण शश्वद्भ्रमति [1]भूतले। [2]सुकृती प्रणमेत्पुण्याद्ब्राह्मणं हरिरूपिणम्॥४३॥**

और परम अद्भुत हो, वह सब आप मन में सोचकर इस समय बताएँ। जिस पुराण में विश्व के पुण्य-क्षेत्र भारतवर्ष में परिपूर्णतम परमात्मा कृष्ण के जन्म (अवतार) लेने की बात हो, वह हमें सुनाइए। मुने! किस पुण्यवान् के पवित्र गृह में (भगवान् कृष्ण का) जन्म हुआ? किस धन्य, मान्य एवं पुण्यवती पतिव्रता ने उन्हें पुत्र रूप में जन्म दिया? प्रकट होकर वे उसके घर से कहाँ चले गए? किसलिए गए? जाकर उन्होंने क्या किया? या वे फिर वहाँ कैसे आये? किसकी प्रार्थना करने पर उन्होंने पृथ्वी का भार उतारा? अथवा किस सेतु (मर्यादा) की स्थापना करके वे पुनः गोलोक को पधारे? इन बातों से तथा अन्य आख्यानों से युक्त जो श्रुतिदुर्लभ पुराण है, उसका सम्यक् ज्ञान मुनियों के लिए भी दुर्लभ है। वह मन को निर्मल करने का साधन है। मैंने अपने ज्ञान के अनुसार जो कुछ शुभ तथा अशुभ बातें पूछी हैं, उनसे सम्बद्ध (या उनका उत्तर देते हुए) जो पुराण सद्यः वैराग्य उत्पन्न करने वाला हो, उसे आप बताएँ। जो शिष्य के पूछे या न पूछे हुए विषय की भी व्याख्या करके बता देता है तथा योग्य और अयोग्य (शिष्य) के प्रति भी समान भाव रखता है, वही सत्पुरुषों में श्रेष्ठ सद्गुरु है॥२९-३९॥

सूतनन्दन बोले—आपके चरणारविन्द के दर्शन से मेरे लिए सब कुशल है। मैं सिद्ध क्षेत्र से आ रहा हूँ और नारायण-आश्रम को जाऊँगा। ब्राह्मण-समूह को देखकर नमस्कार करने के लिए तथा भारतवर्ष में पुण्यदायक नैमिषारण्य को देखने के लिए भी यहाँ चला आया हूँ। देवता, ब्राह्मण तथा गुरु को देखकर जो झट से उन्हें प्रणाम नहीं करता है, वह कालसूत्र नरक में तब तक पड़ा रहता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं। पृथ्वी पर विष्णु

---

१ क. भारते। २ क. ०कृतिस्तं नमे०।

भगवन्यत्त्वया पृष्टं ज्ञातं सर्वमभीप्सितम्। सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम्॥४४॥
पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्त्वज्ञानविवर्धनम्॥४५॥
कामिनां कामदं चेदं मुमुक्षूणां च मोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्॥४६॥
ब्रह्मखण्डे[1] सर्वबीजं परब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परात्परम्॥४७॥
वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक। स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात्॥४८॥
सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद्योगिसंगेन योगिनः। वैष्णवा भक्तसंगेन क्रमात्सद्योगिनः पराः॥४९॥
यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्। ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्॥५०॥
जीवकर्मविपाकश्च शालिग्रामनिरूपणम्। तासां च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्॥५१॥
प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम्। कीर्तेरुत्कीर्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः॥५२॥
सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद्यत्स्थानं शुभाशुभम्। वर्णनं नरकाणां च रोगाणां मोक्षणं ततः॥५३॥
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्तितम्। अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम्॥५४॥
गणेशभृगुसंवादे सर्वतत्त्वनिरूपणम्। निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम्॥५५॥

ब्राह्मण के रूप में सदा भ्रमण करते रहते हैं। (इसलिए) पुण्यात्मा व्यक्ति (अपने) पुण्य के प्रभाव से विष्णु रूपी ब्राह्मण को प्रणाम करता है। भगवन्! आपने जो कुछ पूछा है, वह सब (आपका) अभिप्राय मैंने जान लिया। पुराणों में सारभूत ब्रह्मवैवर्तपुराण है। यह पुराण पुराणों, उपपुराणों एवं वेदों के भ्रम का निराकरण करने वाला, हरि-भक्ति देने वाला और समस्त तत्त्वों का ज्ञान बढ़ाने वाला है। यह भोगियों को भोग तथा मुमुक्षुओं को मोक्ष प्रदान करता है। यह वैष्णवों के लिए भक्तिदायक तथा कल्पवृक्ष-स्वरूप है। इसके ब्रह्मखण्ड में सर्व-बीजस्वरूप उस परात्पर परब्रह्म का निरूपण है, जिसका योगी, सन्त तथा वैष्णव ध्यान करते हैं। शौनक! वैष्णव, योगी तथा सन्त में कोई भेद नहीं है। जीवधारी मनुष्य अपपे ज्ञान के परिणामस्वरूप क्रमशः सन्त आदि होते हैं। सत्संग से मनुष्य सन्त होते हैं, योगी के संग से योगी और भक्त के संग से वैष्णव होते हैं। ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ योगी हैं॥४०-४९॥

इसके बाद प्रकृतिखण्ड है, जिसमें देवों, देवियों तथा सकल जीवधारियों की उत्पत्ति और देवियों का पवित्र चरित्र वर्णित है। जीवों के कर्म-परिणाम तथा शालिग्राम का निरूपण है। उन देवियों के कवच, स्तोत्र, मन्त्र तथा पूजा का भी निरूपण है। उस (प्रकृतिखण्ड) में प्रकृति के लक्षण तथा उसकी कलाओं और अंशों का वर्णन है। उन देवियों की कीर्ति का कीर्तन एवं प्रभाव का प्रतिपादन है। पुण्यात्माओं तथा पापात्माओं को जो-जो शुभ तथा अशुभ स्थान प्राप्त होते हैं, उनका तथा नरकों एवं रोगों और उनसे छूटने के उपाय का भी वर्णन है॥५०-५३॥

तदनन्तर गणेशखण्ड में गणेश के जन्म एवं वेद-शास्त्रों में अत्यन्त दुर्लभ उनके चरित्र का वर्णन है। गणेश और भृगु के संवाद में सकल तत्त्वों का निरूपण हुआ है। (गणेश के) गूढ़ कवच, स्तोत्र, मन्त्र तथा तन्त्रों का वर्णन है॥५४-५५॥

---

१ ख. खण्डं स।

श्रीकृष्णजन्मखण्डं च कीर्तितं च ततः परम्। भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्मकर्म च॥५६॥
भुवो भारावतरणं क्रीडाकौतुकमङ्गलम्। सतां सेतुविधानं च जन्मखण्डे निरूपितम्॥५७॥
इदं ते कथितं विप्र पुराणप्रवरं परम्। चतुःखण्डैः परिमितं सर्वधर्मनिरूपणम्॥५८॥
सर्वेषामीप्सितं[1] श्रीदं सर्वाशापूर्णकारकम्[2]। ब्रह्मवैवर्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥५९॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसंमतम्[3]। विवृतं ब्रह्म कात्स्न्यं च कृष्णेन यत्र शौनक॥६०॥
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः॥६१॥
इदं पुराणसूत्रं च पुरा दत्तं च ब्रह्मणे। निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना॥६२॥
महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा। धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च॥६३॥
*नारायणर्षिर्भगवान्प्रददौ नारदाय च। नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे॥६४॥
व्यासः पुराणसूत्रं तत्संव्यस्य विपुलं महत्। मह्यं ददौ [4]सिद्धक्षेत्रे पुण्यदेशे मनोहरम्॥६५॥
मयेदं कथितं ब्रह्मँस्तत्समग्रं निशामय। अष्टादशसहस्रं तु व्यासेनेदं पुराणकम्॥६६॥
पुराणकात्स्न्यश्रवणे यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनमध्यायश्रवणेन च॥६७॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
ऽनुक्रमणिकानाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

तदनन्तर श्रीकृष्णजन्मखण्ड का कीर्तन हुआ है। (उसमें) भारतवर्ष के पुण्य क्षेत्र में श्रीकृष्ण के जन्म-कर्म, (उनके द्वारा) पृथ्वी के भार उतारने, (उनके) मंगलमय क्रीडाकौतुक और सज्जनों के लिए सेतु (मर्यादा)-विधान का वर्णन है। विप्र! यह मैंने परम उत्कृष्ट पुराण के विषय में तुमसे कहा है। यह चार खंडों में सीमित है। इसमें समस्त धर्मों का निरूपण है। यह सबको प्रिय, लक्ष्मीदायक तथा सबकी आशाओं को पूर्ण करने वाला है। इसका नाम ब्रह्मवैवर्त है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट फलों को देने वाला है। यह पुराणों का सार है और पूर्णतया वेदों के अनुकूल है। शौनक! इसमें श्रीकृष्ण ने (अपने) सम्पूर्ण ब्रह्मभाव को प्रकट किया है, इसलिए पुराणवेत्ता इसे ब्रह्मवैवर्तक कहते हैं॥५४-६१॥

पूर्वकाल में रोग-रहित गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने यह पुराण-सूत्र ब्रह्मा को दिया था। फिर ब्रह्मा ने महान् तीर्थ पुष्कर में यह धर्म को दे दिया। धर्म ने (अपने) पुत्र नारायण को प्रसन्नतापूर्वक यह प्रदान किया। भगवान् नारायण ने नारद को प्रदान किया। नारद ने गंगा-तट पर व्यास जी को दिया। व्यास जी ने उस मनोहर पुराणसूत्र को बहुत विस्तृत करके पुण्य प्रदेश वाले सिद्धक्षेत्र में मुझे दिया। ब्रह्मन्! मेरे कहे हुए इस सम्पूर्ण पुराण को आप सुनिए। व्यासजी ने इस पुराण को अठारह हजार श्लोकों में विस्तृत किया है। मनुष्य सम्पूर्ण पुराणों के श्रवण से जो फल प्राप्त करता है, वह फल इसके एक अध्याय के श्रवण से ही प्राप्त हो जाता है॥६२-६७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में अनुक्रमणिका नामक पहला अध्याय समाप्त॥१॥

---

*इदं श्लोकार्धं ख. पुस्तके नास्ति।

१ क. ०प्सिततमं स०। २ ख. ०रणम्। ३ ख. संमितम्। ४ क. सिद्धिक्षेण।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शौनक उवाच

किमपूर्वं श्रुतं सौते परमाद्भुतदर्शनम्[1]। सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ॥१॥

सौतिरुवाच

वन्दे गुरोः पादपद्मं व्यासस्यामिततेजसः। हरिं देवान्द्विजान्नत्वा धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥२॥
यच्छ्रुतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्। अज्ञानान्धतमोध्वंसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम् ॥३॥
ज्योतिः समूहं प्रलये पुराऽऽसीत्केवलं द्विज। सूर्यकोटिप्रभं नित्यमसंख्यं विश्वकारणम् ॥४॥
स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत्। ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥५॥
तेषामुपरि गोलोकं [2]नित्यमीश्वरवद्द्विज। त्रिकोटियोजनायामं विस्तीर्णं मण्डलाकृति ॥६॥
तेजः स्वरूपं सुमहद्रत्नभूमिमयं परम्। अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यं च वैष्णवैः ॥७॥

अध्याय २

गोलोक आदि की स्थिति का वर्णन तथा श्रीकृष्ण के परात्पर स्वरूप का निरूपण

शौनक बोले—सूतनन्दन! आपने कौन-सा अपूर्व एवं परम अद्भुत शास्त्र (पुराण) सुना है। सबका विस्तार करके (पहले) अत्युत्तम ब्रह्मखण्ड सुनाइए ॥१॥

सौति ने कहा—मैं अमित तेजस्वी गुरु व्यासदेव के चरणारविन्द की वन्दना करता हूँ। विष्णु, देवों और ब्राह्मणों को नमस्कार करके मैं सनातन धर्मों का वर्णन कर रहा हूँ। मैंने व्यासजी के मुख से जिस परमोत्तम ब्रह्मखण्ड का श्रवण किया है, वह अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाशक तथा ज्ञानमार्ग का प्रकाशक है। द्विज! पहले प्रलयकाल में केवल ज्योतिः समूह था, जिसकी प्रभा करोड़ों सूर्य के समान थी। वह ज्योतिःपुंज नित्य, असंख्य तथा विश्व का कारण है। स्वेच्छामय परमात्मा की वह ज्योति महान् उज्ज्वल है। उस ज्योति के भीतर तीनों लोक मनोहर रूप में विद्यमान हैं। द्विज! उन (तीनों लोक) के ऊपर गोलोक है, जो परमात्मा के समान नित्य है। उसकी लंबाई-चौड़ाई तीन करोड़ योजन है। वह मंडलाकार में फैला हुआ है। वह महान् तेजःस्वरूप है तथा वहाँ की भूमि परम रत्नमयी है। योगी स्वप्न में भी उसे नहीं देख पाते हैं, जब कि वैष्णव (उसे) देखते और प्राप्त भी

---

१ क. ०तमीप्सितम्। २ क. ०त्यममरव०।

योगेन धृतमीशेन चान्तरिक्षस्थितं वरम्। आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितम् ॥८॥
सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम्। लये कृष्णयुतं सृष्टौ गोपगोपीभिरावृतम् ॥९॥
तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात्। वैकुण्ठं शिवलोकं तु तत्समं सुमनोहरम् ॥१०॥
कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति। लये शून्यं च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥११॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च जरामृत्य्वादिवर्जितम्। सव्ये च शिवलोकं च कोटियोजनविस्तृतम् ॥१२॥
लये शून्यं च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम्। गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहरम् ॥१३॥
परमाह्लादकं शश्वत्परमानन्दकारकम्। ध्यायन्ते योगिनः शश्वद्योगेन ज्ञानचक्षुषा ॥१४॥
तदेवानन्दजनकं निराकारं परात्परम्। तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम् ॥१५॥
नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम्। शारदीयपार्वणेन्दुशोभितं चामलाननम् ॥१६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥१७॥
[1]सद्रत्नभूषणौघेन भूषितं भक्तवत्सलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥१८॥
श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम्। सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥१९॥

करते हैं। आकाश में स्थित उस श्रेष्ठ लोक को परमात्मा ने योगशक्ति से धारण कर रखा है। गोलोक आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग), मृत्यु, शोक तथा भय से रहित है। उत्तम रत्नों से खचित असंख्य मन्दिर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। प्रलयकाल में वहाँ केवल श्रीकृष्ण रहते हैं और सृष्टिकाल में वह गोप-गोपियों से भरा रहता है ॥२-९॥

गोलोक से नीचे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिण भाग में वैकुंठ और वामभाग में शिवलोक है। ये दोनों लोक भी गोलोक के समान अत्यन्त सुन्दर हैं। वैकुंठ मंडलाकार में एक करोड़ योजन तक फैला हुआ है। प्रलय-काल में वह शून्य रहता है और सृष्टिकाल में वहाँ लक्ष्मी और नारायण विराजमान रहते हैं। उनके साथ चार भुजा वाले पार्षद भी रहते हैं। वैकुंठ भी जरा, मृत्यु आदि से रहित है। उसके वाम भाग में एक करोड़ योजन में फैला हुआ शिवलोक है। प्रलयकाल में शिवलोक शून्य रहता है और सृष्टिकाल में पार्षदों समेत शंकर वहाँ विराजमान रहते हैं। गोलोक के भीतर अत्यन्त मनोहर ज्योति है, जो परम आह्लादजनक तथा नित्य परमानन्द उत्पन्न करने वाली है। योगी जन सदा योग के द्वारा ज्ञानचक्षु से उसका ध्यान करते हैं। वह ज्योति ही आनन्ददायक, निराकार तथा परात्पर ब्रह्म है। उस ज्योति के भीतर अत्यन्त मनोहर रूप विराजमान है, जो नये बादल के समान श्यामवर्ण है। उसके नेत्र लाल कमल के समान हैं। उसका निर्मल मुख शरत्पूर्णिमा के समान शोभायमान है। करोड़ों कन्दर्प के तुल्य उसका लावण्य है। वह मनोरम रूप (विविध) लीलाओं का धाम है। उसकी दो भुजाएँ हैं, हाथ में मुरली है। चेहरा मुसकराता हुआ है और शरीर पीताम्बरधारी है। वह उत्तम रत्नों के आभूषणों से विभूषित, भक्त-वत्सल है। उसके अंग चंदन से चर्चित तथा कस्तूरी और केसर से युक्त हैं। उसका वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभ मणि से सुशोभित है। उत्तम रत्नों के सार-तत्त्व से बने हुए किरीट-मुकुटों से उसका मस्तक भासमान है। वह रत्न-सिंहासन पर आसीन तथा वनमाला से विभूषित है। वही परम ब्रह्म एवं सनातन भगवान् है। वह स्वेच्छामय

१ क. ०द्रत्नैर्भूषणैः प्रेमभू०।

रत्नसिंहासनस्थं च वनमालाविभूषितम्। तदेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥२०॥
स्वेच्छामयं सर्वबीजं सर्वाधारं परात्परम्। किशोरवयसं शश्वद्गोपवेषविधायकम् ॥२१॥
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकारकम्। निरीहं निर्विकारं च परिपूर्णतमं विभुम् ॥२२॥
रासमण्डलमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं[1] वरम्। माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥२३॥
परमानन्दबीजं[2] च सत्यमक्षरमव्ययम्। सर्वसिद्धेश्वरं[3] सर्वसिद्धिरूपं च सिद्धिदम् ॥२४॥
प्रकृतेः परमीशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम्। आद्यं पुरुषमव्यक्तं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥२५॥
सत्यं स्वतन्त्रमेकं च परमात्मस्वरूपकम्। ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत्परमायणम् ॥२६॥
एवं[4] रूपं परं बिभ्रद्भगवानेक एव सः। दिग्भिश्च नभसा सार्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह ॥२७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
परब्रह्मनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सौतिरुवाच

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकं च भयंकरम्। निर्जन्तुनिर्जलं घोरं निर्वातं तमसाऽऽवृतम् ॥१॥

सब का आदिकारण सब का आधार तथा परात्पर ब्रह्म है। उसकी नित्य किशोरावस्था रहती है और वह गोपवेष धारण किये रहता है। वह करोड़ों पूर्णचन्द्र की शोभा से युक्त है तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाला है। वह निरीह, निर्विकार, परिपूर्णतम, सर्वव्यापक, रासमंडल के मध्य में अवस्थित, शान्त, रासेश्वर, श्रेष्ठ, मंगलकारी, मंगलयोग्य, मंगलमय, परमानन्द का बीज, सत्य, अक्षर, अविनाशी, समस्त सिद्धियों का प्रभु, सकल सिद्धियों का स्वरूप, सिद्धिदायक, प्रकृति से परे, ईश्वर, निर्गुण, नित्यशरीरधारी, आदिपुरुष, अव्यक्त, बहुत नामों से पुकारा जाने वाला, बहुतों द्वारा स्तवन किया जाने वाला, सत्य, स्वतन्त्र, एक, परमात्मस्वरूप, शान्त तथा परम आश्रय है। शान्त वैष्णव जन उसी का ध्यान करते हैं। इस प्रकार परम रूप धारण करने वाले वे भगवान् एक ही हैं। उन्होंने (प्रलय काल में) दिशाओं और आकाश के साथ विश्व को शून्य देखा ॥१०-२७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में परब्रह्मनिरूपण नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

श्रीकृष्ण से सृष्टि का आरंभ तथा नारायण द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति

सौति बोले—द्विज! स्वेच्छामय प्रभु ने देखा कि गोलोक भयंकर लग रहा है और विश्व शून्यमय,

---

१ क. ०से हरं हरिम्०। २ क. ०न्दराजं। ३ क. ०रं सिद्धसि०। ४ क. एकं रू०।

वृक्षशैलसमुद्रादिविहीनं विकृताकृतिम्। निर्मृत्तिकं[1] च निर्धातुं निःसस्यं निस्तृणं द्विज ॥२॥
आलोच्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान्। स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः ॥३॥
आविर्बभूवुः सर्गादौ[2] पुंसो दक्षिणपार्श्वतः। भवकारणरूपाश्च मूर्तिमन्तस्त्रयो गुणाः ॥४॥
ततो महानहंकारः पञ्चतन्मात्र एव च। रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेति संज्ञकाः ॥५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात्स्वयं नारायणः प्रभुः। श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः ॥६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरः स्मेरमुखाम्बुजः। रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः ॥७॥
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः। शारदेन्दुप्रभामृष्टमुखेन्दुसुमनोहरः ॥८॥
कामदेवप्रभामृष्टरूपलावण्यसुन्दरः। श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः ॥९॥

नारायण उवाच

वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्। कारणं कारणानां च कर्म तत्कर्मकारणम् ॥१०॥
तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्वीशं च तापसम्। वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥११॥
निष्कामं कामरूपं[3] च कामघ्नं कामकारणम्। सर्वं सर्वेश्वरं सर्वबीजरूपमनुत्तमम् ॥१२॥
वेदरूपं वेदबीजं[4] वेदोक्तफलदं फलम्। वेदज्ञं तद्विधानं च सर्ववेदविदां वरम् ॥१३॥

भयंकर, जीव-जन्तुओं से रहित, जल-विहीन, दारुण, वायुशून्य, अंधकार से आवृत, वृक्ष, पर्वत एवं समुद्र आदि से विहीन, विकृताकार, मृत्तिका, धातु, सस्य और तृण से रहित हो गया है। मन ही मन सब बातों की आलोचना करके सहायक रहित, एकमात्र प्रभु ने स्वेच्छा से सृष्टि-रचना आरंभ की ॥१-३॥

सृष्टि के आदि में (उस परम) पुरुष के दक्षिण पार्श्व से संसार के कारण रूप तीन मूर्तिमान् गुण प्रकट हुए। उन (गुणों) से महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्राएं और रूप, रस, गन्ध स्पर्श और शब्द (क्रमशः) उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् स्वयं नारायण प्रभु प्रकट हुए जो श्यामवर्ण, तरुण, पीताम्बर, चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए, मुखारविन्द पर मन्द मुसकान से युक्त, रत्नों के आभूषणों से सम्पन्न, शार्ङ्गधनुष धारण किए हुए, कौस्तुभ मणि से विभूषित, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न से युक्त, लक्ष्मी के निवास, शोभा के निधान, श्री के चिन्तक, शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा की प्रभा से सेवित मुखचन्द्र के कारण अत्यन्त मनोहर और कामदेव की कान्ति से युक्त रूप-लावण्य के कारण सुन्दर थे। वे श्रीकृष्ण के सामने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करने लगे ॥४-९॥

नारायण बोले—जो वर (श्रेष्ठ), वन्दनीय, वरदायक, वर देने में समर्थ, वर (की प्राप्ति) के कारण, कारणों के भी कारण, कर्मस्वरूप, उस कर्म के भी कारण, तपः स्वरूप, निरन्तर उस तप के फल देने वाले, तपस्वी, तपस्वियों के प्रभु, नवीन मेघ के समान श्याम, स्वात्माराम, मनोहर, निष्काम, कामरूप, कामना के नाशक, कामदेव की उत्पत्ति के कारण, सब, सब के ईश्वर, सर्वबीजस्वरूप, सर्वोत्तम, वेदस्वरूप, वेदों के बीज, वेदोक्त फल के दाता फलरूप, वेदों के ज्ञाता, उसके विधान को जानने वाले तथा सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं के शिरोमणि हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूं ॥१०-१३॥

---

१ ख. निर्मुक्तिकं। २ क. सर्वादौ। ३ क. ०मपूरं च। ४ ख. ०दमवं वे०।

इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया। रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः ॥१४॥
नारायणकृतं स्तोत्रं यः पठेत्सुसमाहितः। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं पापं तस्य न विद्यते ॥१५॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्। भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनो लभेत् ॥१६॥
कारागारे विपद्ग्रस्तः स्तोत्रेणानेन मुच्यते। रोगात्प्रमुच्यते रोगी[1] वर्षं श्रुत्वा च संयतः ॥१७॥

इति ब्रह्मवैवर्ते नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वतः। शुद्धस्फटिकसंकाशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः ॥१८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरो वरः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ॥१९॥
त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः परः। सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥२०॥
मृत्योर्मृत्युरीश्वरश्च मृत्युर्मृत्युंजयः शिवः। ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः ॥२१॥
पूर्णचन्द्रप्रभामृष्टसुखदृश्यो मनोहरः। वैष्णवानां च प्रवरः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥२२॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्गदः ॥२३॥

ऐसा कह कर भक्ति से युक्त वे (नारायण) उनकी आज्ञा से परमात्मा (कृष्ण) के सामने रत्न-निर्मित रमणीय सिंहासन पर आसीन हो गये। जो एकाग्रचित्त होकर नारायण द्वारा किये गये इस स्तोत्र का पाठ करता है और जो नित्य, तीनों संध्याओं के समय (इसको) पढ़ता है, वह निष्पाप हो जाता है। इसके पाठ से पुत्र चाहने वाले को पुत्र मिलता है, पत्नी की कामना करने वाले को पत्नी मिलती है,राज्य से भ्रष्ट हुए को राज्य मिलता है और धन से वंचित हुए को धन की प्राप्ति होती है। कारागार के भीतर विपत्ति में पड़ा हुआ व्यक्ति इस स्तोत्र के प्रभाव से (कारागार से) छूट जाता है। एक वर्ष तक संयमपूर्वक इस स्तोत्र को सुन कर रोगी रोग से मुक्त हो जाता है॥१४-१७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में नारायणकृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

सौति बोले—अनन्तर उनके बायें पार्श्व से शुद्ध स्फटिक मणि के समान धवल, पाँच मुख वाले, दिगम्बर (नग्न), तपाये हुए सुवर्ण की कान्ति के समान जटाओं को धारण किये हुए, श्रेष्ठ, मन्द मुसकान करते हुए प्रसन्न-मुख, त्रिनेत्र, भाल पर चन्द्रमा को धारण किये हुए, हाथों में त्रिशूल, पट्टिश और जपमाला लिए हुए, सर्वसिद्धेश्वर, सिद्ध, योगीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं, मृत्यु के मृत्यु, ईश्वर, मृत्यु रूप, मृत्यु को जीतने वाले, कल्याणकारक, ज्ञानानन्द, महाज्ञानी, श्रेष्ठ, महाज्ञानदाता, पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा से भूषित मुख वाले, मनोहर, वैष्णवों के शिरोमणि और ब्रह्म तेज से देदीप्यमान शंकर प्रकट हुए। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के सामने खड़े होकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करना

---

१ ख. ०गी ध्रुवं श्रु०।

महादेव उवाच

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानां[1] च वन्दे तमपराजितम् ॥२४॥
विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्। विश्वाधारं च विश्वस्थं[2] विश्वकारणकारणम् ॥२५॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम् ॥२६॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम्। इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे॥
नारायणं च संभाष्य उवास स तदाज्ञया ॥२७॥
इति शंभुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयं च पदे पदे ॥२८॥
संततं वर्धते मित्रं धनमैश्वर्यमेव च। शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च ॥२९॥

इति ब्रह्मवैवर्ते शंभुकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य नाभिपङ्कजात्। महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः ॥३०॥
शुक्लवासाः शुक्लदन्तः शुक्लकेशश्चतुर्मुखः। योगीशः शिल्पिनामीशः सर्वेषां जनको गुरुः ॥३१॥

आरम्भ किया। उस समय उनके शरीर में रोमांच रहा था, आँखें आसुओं से भरी थीं और वाणी अत्यन्त गद्गद हो रही थी ॥१८-२३॥

महादेव बोले—जयस्वरूप, जय देने वाले, जय के कारण, जय देने वालों में सर्वश्रेठ और अपराजित उस देव की मैं वन्दना कर रहा हूँ जो विश्वरूप, विश्वेश्वराधिपति, विश्व के ईश,विश्व के कारण, विश्व के आधार, विश्व में स्थित, विश्वकारण के कारण, विश्व की रक्षा के कारण, विश्वहन्ता, विश्व की सृष्टि में सर्वोत्तम, फल के बीज, फल के आधार, फलस्वरूप, फल के भी फलदाता, तेजःस्वरूप, तेजोदायक और समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ हैं ॥२४-२६½॥

ऐसा कह कर नमस्कार करके उनकी आज्ञा से श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासन पर नारायण के साथ वार्तालाप करते हुए वे बैठ गए। जो मनुष्य संयतचित्त होकर इस शम्भु-रचित स्तोत्र का पाठ करता है उसके सभी कार्यों की सिद्धि और पग-पग पर विजय प्राप्त होती है। उसके मित्र, धन, ऐश्वर्य की सदा वृद्धि होती है और शत्रुओं की सेनाएँ, दुःख एवं पाप नष्ट होते हैं ॥२७-२९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में शम्भुकृत श्रीकृष्ण-स्तोत्र समाप्त।

सौति बोले—तदनन्तर भगवान् कृष्ण के नाभि-कमल से महातपस्वी, श्रेष्ठ और हाथ में कमण्डलु लिए वृद्ध ब्रह्मा प्रकट हुए। उनके वस्त्र, दाँत और केश धवल थे। चार मुख थे। वे योगिराज, शिल्पियों के अधीश्वर,

---

१ क. •दाने च। २ ख. ०श्वस्तं वि०।

तपसां फलदाता च प्रदाता सर्वसंपदाम्। स्रष्टा विधाता कर्ता च हर्ता च सर्वकर्मणाम् ॥३२॥
धाता चतुर्णां वेदानां ज्ञाता वेदप्रसूपतिः। शान्तः सरस्वतीकान्तः सुशीलश्च कृपानिधिः ॥३३॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम्। अव्यक्तमव्ययं व्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ॥३५॥
किशोरवयसं शान्तं गोपीकान्तं मनोहरम्। नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥३६॥
वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम्। रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥३७॥
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे। नारायणेशौ संभाष्य स उवास तदाज्ञया ॥३८॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥३९॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे श्रीपुत्रपौत्रवर्धिनी। अकीर्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्तिर्वर्धते चिरम् ॥४०॥

इति ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चाद्वक्षसः परमात्मनः। सस्मितः पुरुषः कश्चिच्छुक्लवर्णो जटाधरः ॥४१॥

सबके उत्पादक, गुरु, तपस्याओं के फलदाता, समस्त सम्पत्तियों के प्रदायक, स्रष्टा, विधाता, समस्त कर्मों के कर्ता, हर्ता, धाता (धारण करने वाले), चारों वेदों के ज्ञाता, वेदों के प्रकट करने वाले और उनके पति, शान्त, सरस्वती के कान्त, सुशील तथा कृपानिधान हैं। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़ कर उनका स्तवन किया। उस समय उनके सम्पूर्ण अंगों में रोमांच हो आया तथा उनकी ग्रीवा भगवान् के सामने भक्तिभाव से झुक गई थी ॥३०-३४॥

ब्रह्मा बोले—मैं भगवान् कृष्ण की वन्दना करता हूँ, जो गुणों से परे, एकमात्र गोविन्द, अविनाशी, अव्यय (नित्य एक रस रहने वाले), व्यक्त, गोपवेषधारी, किशोर अवस्था वाले, शान्त, गोपियों के कान्त, मनोहर, नवीनघन की भाँति श्यामल, करोड़ों काम से सुन्दर, वृन्दावन के भीतर रास-मण्डल में विराजमान, रासेश्वर, रास में सदैव रहने वाले और रासजनित उल्लास के लिए सदा उत्सुक रहने वाले हैं ॥३५-३७॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण को नमस्कार करके उनकी आज्ञा से नारायण और शिव के साथ संभाषण करते हुए ब्रह्मा श्रेष्ठ रत्नसिंहासन पर बैठ गये। जो प्रातःकाल उठकर ब्रह्मा द्वारा किए गए इस स्तोत्र का पाठ करता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और दुःस्वप्न सुस्वप्न हो जाता है। उसे श्री, पुत्र एवं पौत्र बढ़ाने वाली गोविन्द की भक्ति प्राप्त होती है। उसकी अपकीर्ति नष्ट हो जाती है और सत्कीर्ति चिरकाल तक बढ़ती रहती है ॥३८-४०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में ब्रह्मकृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

सौति बोले—तत्पश्चात् उस परमात्मा के वक्षःस्थल से शुक्ल वर्ण का कोई एक जटाधारी पुरुष प्रकट हुआ, जो मन्द मुसकान कर रहा था और सभी जीवों के समस्त कर्मों का साक्षी, सर्वज्ञाता, सर्वत्र समभाव से रहने

सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकर्मणाम्। समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः ॥४२॥
धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत्। स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मा फलोद्भवः ॥४३॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद्भुवि। तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम् ॥४४॥

श्रीधर्म उवाच

कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम्। गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥४५॥
गोपेश्वरं च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम्। गवामीशं च गोष्ठस्थं गोवत्सपुच्छधारिणम् ॥४६॥
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम्। [1]वन्देऽनवद्यमनघं श्यामं शान्तं मनोहरम् ॥४७॥
इत्युच्चार्य समुत्तिष्ठन्रत्नसिंहासने वरे। ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान्संभाष्य स उवास ह ॥४८॥
चतुर्विंशतिनामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च। यः पठेत्प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो जयी ॥४९॥
मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं[2] भवेद्ध्रुवम्। स यात्यन्ते हरेः स्थानं हरिदास्यं[3] भवेद्ध्रुवम् ॥५०॥
नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्रतिर्भवेत्। चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत्करगतं भवेत् ॥५१॥
तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च। भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः ॥५२॥

इति ब्रह्मवैवर्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

वाला, सहृदय, हिंसा और क्रोध से हीन, धर्म ज्ञान से युक्त, धर्ममूर्ति, धर्मिष्ठ, धर्मियों का धर्म, परमात्मा तथा फलदाता था। उन्होंने भगवान् श्री कृष्ण के सामने खड़े होकर भूमि में दण्डवत् प्रणाम किया और सबके प्रभु एवं समस्त कामनाओं के देने वाले उन परमात्मा की स्तुति करना आरम्भ किया ॥४१-४४॥

धर्म बोले—कृष्ण, विष्णु, वासुदेव, परमात्मा, ईश्वर, गोविन्द, परमानन्दरूप, एक, अविनाशी, अच्युत, गोपेश्वर, गोपीश, गोप, गोरक्षक, व्यापक, गौओं के ईश, गोष्ठ (गोशाला) में रहने वाले, गौओं के बछड़ों की पूंछ धारण करने वाले तथा गौ, गोप और गोपियों के मध्य रहने वाले, प्रधान, पुरुषोत्तम, अनवद्य, अनघ, श्याम, शान्त और मनोहर (परमात्मा) की मैं वन्दना करता हूँ ॥४५-४७॥

ऐसा कह कर धर्म उठकर खड़े हुए। फिर वे भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के साथ वार्तालाप करते हुए उस श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासन पर बैठे ॥४८॥ जो प्रातःकाल उठकर धर्म के मुख से निकले हुए इन चौबीस नामों का पाठ करता है वह सर्वत्र सुखी और विजयी होता है ॥४९॥ मृत्यु के समय उसके मुख से हरि-नाम का उच्चारण निश्चित रूप से होता है और अन्त काल में भगवान् के स्थान में जाकर वह भगवान् की दास्य-भक्ति अवश्य प्राप्त करता है ॥५०॥ नित्य उसे धर्म की ही प्राप्ति होती है और अधर्म में उसकी रुचि कभी नहीं होती है। चारों वर्गों (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) का फल सदा के लिए उसके हाथ में आ जाता है ॥५१॥ उसे देखते ही समस्त पाप, भय तथा दुःख भयभीत होकर उसी तरह भाग खड़े होते हैं जैसे गरुड को देख कर साँप (भाग जाते हैं) ॥५२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में धर्मकृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

---

१ क. ०न्दे नवघनश्यामं कामवासं म०। २ क. ०वेद्मवि०। ३ क. ०स्यं लभेद्ध्रु०।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वतः। मूर्तिर्मूर्तिमती साक्षाद्द्वितीया कमलालया ॥५३॥
आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः। एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी ॥५४॥
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥५५॥
सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणां च सुन्दरी। श्रेष्ठा श्रुतीनां शास्त्राणां विदुषां जननी परा ॥५६॥
वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता। शुद्धसत्त्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ॥५७॥
गोविन्दपुरतः स्थित्वा जगौ प्रथमतः सुखम्। तन्नामगुणकीर्तिं च वीणया सा ननर्त च ॥५८॥
कृतानि यानि कर्माणि कल्पे कल्पे युगे युगे। तानि सर्वाणि हरिणा तुष्टाव च पुटाञ्जलिः ॥५९॥

सरस्वत्युवाच

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्। रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥६०॥
रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम्। रासाधिष्ठातृदेवं च वन्दे रासविनोदिनम् ॥६१॥
रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम्। रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तं मनोहरम् ॥६२॥
प्रणम्य च तमित्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती। उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे ॥६३॥
इति वाणीकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। बुद्धिमान्धनवान्सोऽपि विद्यावान्पुत्रवान्सदा ॥६४॥

इति ब्रह्मवैवर्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौति बोले—तत्पश्चात् धर्म के वाम पार्श्व से एक रूपवती कन्या प्रकट हुई, जो साक्षात् दूसरी लक्ष्मी के समान थी। वह मूर्ति नाम से विख्यात हुई ॥५३॥ उसके अनन्तर परमात्मा के मुख से वीणा और पुस्तक लिए हुए एक शुक्ल वर्ण की देवी प्रकट हुई, जो करोड़ों पूर्णचन्द्रमा की शोभा से सम्पन्न थी। उसके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान थे। वह अग्नि में तपाये हुए सुवर्ण की भाँति वस्त्र और रत्नों के भूषणों से विभूषित थी ॥५४-५५॥ वह मन्द मुसकान करती थी एवं उसके दाँत बड़े सुन्दर थे। वह श्यामा (सोलह वर्ष की युवती) सुन्दरियोंमें भी श्रेष्ठ सुन्दरी, श्रुतियों, शास्त्रों और विद्वानों की परमोत्तम जननी, वाणी की अधिष्ठात्री देवी, कवियों की इष्ट देवी, शुद्ध सत्त्व स्वरूप वाली और शान्तरूपिणी सरस्वती थी। उसने भगवान् कृष्ण के सामने स्थित होकर सर्वप्रथम वीणावादन के साथ उनके नाम और गुणों का सुन्दर कीर्तन किया। फिर वह नृत्य करने लगी। उसने हाथ जोड़ कर प्रत्येक कल्प और युगों में किए हुए भगवान् के सभी कार्यों का गान करते हुए उनकी स्तुति की ॥५६-५९॥

सरस्वती बोली—रास-मण्डल के मध्य में स्थित, रासोल्लास के लिए अत्यन्त उत्सुक, रत्नजटित सिंहासन पर सुशोभित, रत्नों के भूषणों से विभूषित, रासेश्वर, श्रेष्ठ रास करने वाले, रासेश्वरी (श्री राधिका जी) के प्राण-वल्लभ, रास के अधिष्ठाता देव और रासविनोदी (आप) की मैं वन्दना करती हूँ। जो रास-क्रीडा से श्रान्त हैं, प्रत्येक रास में विहार करने वाले हैं तथा रास से उत्कण्ठित हुई गोपियों के प्राणवल्लभ हैं, उन शान्त मनोहर श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करती हूँ। इस प्रकार उन्हें प्रणाम करके वह सती सरस्वती प्रसन्नचित्त एवं सफलमनोरथ होकर उस उत्तम रत्न सिंहासन पर समासीन हो गई ॥६०-६३॥ प्रातःकाल उठ कर जो इस सरस्वती कृत स्तोत्र का पाठ करेगा वह सदा बुद्धिमान्, धनवान्, विद्वान् और पुत्रवान् होगा ॥६४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में सरस्वती कृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त।

सौतिरुवाच

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः। एका देवी गौरवर्णा रत्नालंकारभूषिता ॥६५॥
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना। सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्फलप्रदा॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥६६॥
सा हरेः पुरतः स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम्। तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥६७॥

महालक्ष्मीरुवाच

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं[1] सनातनम्। सत्याधारं च सत्यज्ञं सत्यमूलं नमाम्यहम् ॥६८॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा सा चोवास सुखासने। तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशस्त्विषा ॥६९॥
आविर्बभूव तत्पश्चाद्बुद्धेश्च परमात्मनः। सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥७०॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना ॥७१॥
रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता। निद्रातृष्णाक्षुत्पिपासादयाश्रद्धाक्षमादिकाः ॥७२॥
तासां च सर्वशक्तीनामीशाऽधिष्ठातृदेवता। भयंकरी शतभुजा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥७३॥
आत्मनः शक्तिरूपा सा जगतां जननी परा। त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गं च धनुःखड्गशराणि च ॥७४॥

सौति बोले—भगवान् कृष्ण के मन से एक गौर वर्णा देवी प्रकट हुई, जो रत्नों के अलंकारों से भूषित पीताम्बर धारण किये हुए तथा मंदमुसकान से युक्त नवयुवती थी। वह समस्त ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री देवी और समस्त सम्पत्ति का फल प्रदान करने वाली है। वही स्वर्ग में स्वर्ग की लक्ष्मी एवं राजाओं के यहाँ राजलक्ष्मी कही जाती है। उसने भगवान् के सामने खड़ी होकर उन्हें प्रणाम किया और भक्तिभावसे ग्रीवा को झुका कर परमात्मा की स्तुति की ॥६५-६७॥

महालक्ष्मी बोली—सत्य स्वरूप, सत्य के स्वामी, सत्य के बीज, सनातन, सत्य के आधार, सत्य के ज्ञाता और उस सत्य के कारण को मैं नमस्कार कर रही हूँ॥६८॥ तपाये हुए सुवर्ण की भाँति प्रभा से पूर्ण और दिशाओं को अपनी कान्ति से प्रकाशित करती हुई वह (महालक्ष्मी) भी हरि को नमस्कार कर के उस सुखमय सिंहासन पर बैठ गयी॥६९॥ अनन्तर उस परमात्मा की बुद्धि से मूल प्रकृति प्रकट हुई, जो सब की अधिष्ठात्री देवी और ईश्वरी है॥७०॥ वह तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली वह देवी करोड़ों सूर्यों का तिरस्कार कर रही थी। उसका मुख मंद मुसकान से प्रसन्न दीख रहा था। उसके नेत्र शारदीय कमल के समान थे। वह लाल रंग के वस्त्र पहने हुये थी तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित थी। निद्रा, तृष्णा, क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि जो देवियाँ हैं, उन सब की तथा समस्त शक्तियों की वह अधिष्ठात्री देवी है। वह भयंकरी, सौ भुजाएँ धारण करने वाली और दुर्ग के समान दुःखों का नाश करने वाली दुर्गा है। वह आत्मा की शक्तिरूपा और समस्त जगत् की श्रेष्ठ जननी त्रिशूल, शक्ति,

---

1 क. ०त्यराजं स०।

शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमालां कमण्डलुम्। वज्रमङ्कुशपाशं च भुशुण्डीदण्डतोमरम् ॥७५॥
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा। पार्जन्यं वारुणं वाह्नं[1] गान्धर्वं बिभ्रती सती।
कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं मुदान्विता ॥७६॥

प्रकृतिरुवाच

अहं प्रकृतिरीशाना सर्वेशा सर्वरूपिणी। सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥७७॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेव जगतां पतिः। गतिश्च पाता स्रष्टा च संहर्ता च पुनर्विधिः ॥७८॥
स्रष्टुं[2] स्रष्टा च संहर्तुं संहर्ता वेधसां विधिः। परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वकम्।
चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥७९॥
तस्य प्रभावमतुलं वर्णितुं कः क्षमो विभो। भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः ॥८०॥
चराचरांश्च[3] विश्वेषु देवान्ब्रह्मपुरोगमान्। मद्विधाः कति वा देवीः स्रष्टुं शक्तश्च लीलया ॥८१॥
परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वकम्। महान्विराड् यत्कलांशो विश्वसंख्याश्रयो विभो।
वन्दे चाऽऽनन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥८२॥
यं च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। वेदा अहं च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥८३॥
वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोतुं शक्ताश्च लक्ष्यतः। निर्लक्ष्यं कः क्षमः स्तोतुं तं निरीहं नमाम्यहम् ॥८४॥

धनुष, खड्ग, बाण, शंख, चक्र, गदा, पद्म, अक्षमाला, कमण्डलु, वज्र, अंकुश, पाश, भुशुण्डी, दण्ड, तोमर, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, पार्जन्यास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा गान्धर्वास्त्र—इन सब को हाथों में धारण किये वह सती भगवान् कृष्ण के सामने खड़ी होकर प्रसन्न चित्त से उनकी स्तुति करने लगी ॥७१-७६॥

प्रकृति बोली—मैं प्रकृति, ईश्वरी, सर्वेश्वरी, सर्वरूपिणी और सर्वशक्तिस्वरूपा कहलाती हूँ। मुझसे यह जगत् शक्तिमान् है ॥७७॥ आप इस जगत् के स्वतन्त्र स्रष्टा नहीं हैं, किन्तु इसके पति, गति, रक्षक, स्रष्टा, संहारक एवं पुनः सृष्टि करने वाले हैं ॥७८॥ आप सर्जन करने के लिए स्रष्टा, संहार करने के लिए संहर्ता एवं ब्रह्मा के भी उत्पादक हैं। ऐसे परमानन्द रूप आपकी मैं सहर्ष वन्दना करती हूँ। हे विभो! आपके पलक भाँजते ही ब्रह्मा का पतन हो जाता है। जो अपनी भ्रूभङ्ग की लीला मात्र से करोड़ों विष्णु को उत्पन्न कर सकता है ऐसे आपके अनुपम प्रभाव का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है? ॥७९-८०॥ उसी प्रकार आप सारे ब्रह्माण्ड में चर-अचर प्राणियों, ब्रह्मा आदि देवगणों और मेरे समान कितनी देवियों को लीला मात्र से उत्पन्न करने में समर्थ हैं ॥८१॥ अतः परिपूर्णतम एवं अपने से स्तुति के योग्य आपकी मैं सानन्द वन्दना करती हूँ। असंख्य विश्व का आश्रयभूत महान् विराट् पुरुष जिनकी कालामात्र का अंश है, उन परमात्मा (श्रीकृष्ण) की मैं सहर्ष वन्दना करती हूँ ॥८२॥ जिसकी स्तुति करने में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वेद, मैं और वाणी (सरस्वती) असमर्थ हैं तथा जो प्रकृति से परे हैं उन (ईश) की मैं वन्दना करती हूँ ॥८३॥ श्रेष्ठ विद्वान् तथा वेद भी जिनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं और जो लक्ष्यहीन एवम् निरीह हैं, उनकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है? अतः मैं उन परमात्मा को प्रणाम कर रही हूँ ॥८४॥

---

१ क. ०वाय्वं गा०। २ क. ०स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः सं०। ३. क. ०चरेषु वि०।

इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे। उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुवुस्तां सुरेश्वराः ॥८५॥
इति दुर्गाकृतं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः। यः पठेदर्चनाकाले स जयी सर्वतः सुखी ॥८६॥
दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन। भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम् ॥८७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे
दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सौतिरुवाच

आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य रसनाग्रतः। शुद्धस्फटिकसंकाशा देवी चैका मनोहरा ॥१॥
शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालंकारभूषिता। बिभ्रती जपमालां च सावित्री सा प्रकीर्तिता ॥२॥
सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम्। पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥३॥

इस प्रकार कह कर और भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके वह दुर्गा देवी रत्न-सिंहासन पर बैठ गई। उपरान्त देवनायकों ने दुर्गा की स्तुति की ॥८५॥

इस प्रकार जो पूजाकाल में दुर्गा रचित परमात्मा श्रीकृष्ण के इस स्तोत्र का पाठ करता है वह सभी स्थानों में विजयी और सुखी होता है ॥८६॥ दुर्गा उसका गृह छोड़ कर कभी नहीं जाती हैं। इस संसार-सागर में उसका यश सुशोभित रहता है और अन्त काल में वह भगवान् श्री हरि की पुरी में जाता है ॥८७॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में सौति-शौनक-संवाद के द्वारा सृष्टि-निरूपण
के प्रसंग में दुर्गास्तोत्र नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

सावित्री, कामदेव, रति आदि के प्राकट्य का वर्णन

सौति बोले—उसके अनन्तर भगवान् श्री कृष्ण की जिह्वा के अग्र भाग से शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल वर्ण की एक मनोहारिणी देवी प्रकट हुई, जो शुक्लवस्त्र पहने हुए, समस्त आभूषणों से विभूषित और (हाथ में) जपमाला लिए हुए थी। उसे सावित्री कहा गया है ॥१—२॥ वह पतिव्रता सामने खड़ी होकर हाथ जोड़ भक्ति से शिर झुकाकर सनातन परब्रह्म (श्रीकृष्ण) की स्तुति करने लगी ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

नमामि सर्वबीजं त्वां ¹ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निरञ्जनम्॥४॥
इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने वरे। उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसूः॥५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात्कृष्णस्य परमात्मनः। मानसाच्च पुमानेकस्तप्तकाञ्चनसंनिभः॥६॥
मनो मथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम्। तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषिणः॥७॥
तस्य पुंसो वामपार्श्वात्कामस्य कामिनी वरा। बभूवातीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी॥८॥
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम्। रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः॥९॥
हरिं स्तुत्वा तया सार्द्धं स उवास हरेः पुरः। रत्नसिंहासने² रम्ये पञ्चबाणो धनुर्धरः॥१०॥
मारणं स्तम्भनं चैव जृम्भणं शोषणं तथा। उन्मादनं पञ्चबाणान्पञ्चबाणो बिभर्ति सः॥११॥
बाणांश्चिक्षेप सर्वांश्च कामो बाणपरीक्षया। सद्यः सर्वे सकामाश्च बभूवुरीश्वरेच्छया॥१२॥
रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह। तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य लज्जया॥१२॥
वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः। कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन्॥१३॥
कृष्णस्तद्वर्धनं³ दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया। निःश्वासवायुना सार्धं मुखबिन्दून्समुद्गिरन्॥१५॥

सावित्री बोली—सबके बीज (आदि कारण) उस सनातन ब्रह्म ज्योति को मैं नमस्कार करती हूँ, जो पर से भी अत्यन्त परे, श्याम, निर्विकार और निरञ्जन (ब्रह्म) है॥४॥ इतना कहकर मुसकराती हुई वह वेदमाता (सावित्री) भगवान् श्री हरि को नमस्कार कर उस उत्तम रत्न-सिंहासन पर आसीन हो गई॥५॥ अनन्तर परमात्मा कृष्ण के मन से तपाये हुए सुवर्ण के समान एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जो अपने पाँच बाणों से समस्त कामियों के मन को मथ डालता है। इसीलिए बुद्धिमान् लोग उसे 'मन्मथ' (कामदेव) कहते हैं॥६-७॥ उस कामदेव के वाम पार्श्व से एक अत्यन्त सुन्दरी एवं परमोत्तम कामिनी प्रकट हुई, जो समस्त पुरुषों को मुग्ध करती है॥८॥ मन्द-मन्द मुसकराती हुई उस सती को देखकर सभी प्राणियों की उसमें रति हो गई। इसीलिए बुद्धिमानों ने उसका नाम 'रति' बताया है॥९॥ भगवान् के सामने उनकी स्तुति करने के उपरान्त बाण तथा (पुष्पमय) धनुष धारण करनेवाला कामदेव रत्नसिंहासन पर उस रति के साथ आसीन हुआ॥१०॥ मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण और उन्मादन, इन्हीं पांचों बाणों को वह सदैव अपनाये रहता है॥११॥ कामदेव ने अपने बाणों की परीक्षा करने के लिए सभी बाण चला दिये। फिर तो ईश्वर की इच्छा से उसी समय सब लोग कामुक हो गये। (यहाँ तक कि) रति को देखकर ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया किन्तु महायोगी ब्रह्मा लज्जा वश उसे वस्त्र से आच्छादित कर वहीं खड़े रहे॥१२-१३॥ पश्चात् उस वस्त्र को जलाते हुए सुरेश्वर अग्निदेव बड़ी-बड़ी लपटें उठाते हुए करोड़ों ताड़ों के समान विशाल रूप धारण करके प्रज्वलित होने लगे॥१४॥ भगवान् कृष्ण ने उस बढ़ते हुए अग्निको देखकर अपनी लीला से जल उत्पन्न किया—अपने निःश्वास वायु के साथ मुख से जल की एक-एक बूँद गिराने लगे॥१५॥ द्विज! उसी मुखबिंदु के जल

---

१ क. ०ह्मयोनि स०। २ ख. ०ने चाऽऽस्य प०। ३ क. ०ष्णस्तं दहन।

विश्वौघं प्लावयामास मुखबिन्दुजलं द्विज। तत्र किंचिज्जलकणं(णो) वह्निं शान्तं चकार ह॥१६॥
ततःप्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां व्रजेत्। आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता॥१७॥
उत्तस्थौ तज्जलादेकः पुमान्स वरुणः स्मृतः। जलाधिष्ठातृदेवोऽसौ सर्वेषां यादसां पतिः॥१८॥
आविर्बभूव कन्यैका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः। सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः॥१९॥
जलेशस्य वामपार्श्वात्कन्या चैका बभूव सा। वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती॥२०॥
बभूव पवनः श्रीमान्विभोर्निःश्वासवायुना। स च प्राणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः॥२१॥
तस्य वायोर्वामपार्श्वात्कन्या चैका बभूव ह। वायोः पत्नी च सा देवी वायवी परिकीर्तिता॥२२॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतः पातो बभूव ह। जले [1]तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते [2]तड्डिम्भरूपं बभूव ह। ततो महान्विराड्जज्ञे विश्वौघाधार एव सः॥२४॥
यस्यैकलोमविवरे विश्वैकस्य व्यवस्थितिः। स्थूलात्स्थूलतरः सोऽपि महान्नान्यस्ततः परः॥२५॥
स एव षोडशांशोऽपि कृष्णस्य परमात्मनः। महाविष्णुः स विज्ञेयः सर्वाधारः सनातनः॥२६॥
महार्णवे शयानः स पद्मपत्रं यथा जले। बभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवौ॥२७॥
तौ जलाच्च समुत्थाय ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ। नारायणश्च भगवाञ्जघने तौ जघान ह॥२८॥

से समस्त विश्व आप्लावित (जलमग्न) हो गया। और उसी जल के कुछ कणों ने उस अग्नि को शान्त कर दिया। उसी समय से अग्नि जल से शान्त होने लगा। पश्चात् उसी जल से उसका अधिदेवता एक पुरुष रूप में प्रकट हुआ जिसे 'वरुण' कहा गया है। वह जल का अधिष्ठाता देव समस्त जल जीवों का अधिपति है॥१६-१८॥ अनन्तर अग्नि के वाम पार्श्व से एक कन्या प्रकट हुई, जो अग्नि की पत्नी हुई और मनीषी लोग उसे 'स्वाहा' कहते हैं॥१९॥ जलेश्वर (वरुण) के वाम पार्श्व से भी एक कन्या उत्पन्न हुई, जो वरुण की प्रेयसी स्त्री वरुणानी कही जाती है॥२०॥ पुनः उस प्रभु के निःश्वास वायु से श्रीमान् पवन देव की उत्पत्ति हुई, जो सभी के प्राण हैं। श्वास-प्रश्वास के रूप में उसी की कला प्रकट हुई है॥२१॥ उस वायु के भी वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई, जो वायु की पत्नी हुई और उस देवी को 'वायवी' कहा जाता है॥२२॥ पश्चात् काम-बाण द्वारा भगवान् कृष्ण का वीर्यपात हुआ किन्तु उस देवसभा में लज्जावश उन्होंने उसे जल में डाल दिया॥२३॥ सहस्र वर्ष के उपरान्त वह एक अंडे के रूप में प्रकट हुआ। उसी से महान् विराट् उत्पन्न हुआ, जो समस्त विश्व का आधार है॥२४॥ जिसके एक लोम के विवर (छिद्र) में एक विश्व सुव्यवस्थित रहता है। वह स्थूल से अत्यन्त स्थूल है और उससे बड़ा दूसरा कोई नहीं है॥२५॥ वह परमात्मा श्रीकृष्ण का सोलहवाँ अंश है। उसी को 'महाविष्णु' जानना चाहिए, जो सब के आधार और सनातन है॥२६॥ जल में कमल के पत्ते की भाँति वे महासागर में शयन किये हुए हैं। जिनके कान के मल से दो दैत्य उत्पन्न हुए॥२७॥ उन दैत्यों ने जल से उठकर ब्रह्मा की हत्या करनी चाही किन्तु नारायण भगवान् ने अपने जघन पर (उनकी इच्छा से) उनका वध किया॥२८॥ और उन्हीं दोनों के मेद (चर्बी) से समस्त पृथ्वी निर्मित हुई। इसी

---

१ क. तत्प्रेरणं च०। २ क. तद्बिन्दुरू०।

बभूव मेदिनी कृत्स्ना[1] कात्स्न्र्येन मेदसा तयोः । तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुंधरा ॥२९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे
सृष्टिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

शौनक उवाच

गोगोपगोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः । मम संदेहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

सौतिरुवाच

सर्वादिसृष्टौ ताः क्लृप्ताः प्रलये[2] कृष्णसंस्थिताः । सर्वादिसृष्टिकथनं यन्मया कथितं द्विज ॥२॥
सर्वादिसृष्टौ क्लृप्तौ च नारायणमहेश्वरौ । प्रलये प्रलये व्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्च सा ॥३॥

लिये इसे 'मेदिनी' कहा जाता है। उसी पर समस्त विश्व टिका हुआ है। उसकी अधिष्ठात्री देवी का नाम वसुन्धरा है ॥२९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में सौति-शौनक-संवाद
प्रकरण में चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

अध्याय ५

गोलोक आदि के नित्यानित्यत्व की व्यवस्था तथा राधा से गोपांगनाओं का प्रादुर्भाव

शौनक बोले—गोलोक में गायें, गोप और गोपियाँ क्या नित्य (सदैव) रहती हैं या कल्पित हैं ? मेरे सन्देह के निवारणार्थ आप इसको बताने की कृपा करें ॥१॥

सौति बोले—द्विज ! सब की आदि सृष्टि में, जिसका वर्णन मैं कर चुका हूँ, वे गायें, गोप तथा गोपियाँ प्रकट रूप से रहती हैं और प्रलयकाल में वे कृष्ण में अवस्थित हो जाती हैं। सबकी आदि सृष्टि में नारायण और महेश्वर प्रकट रूप से रहते हैं। प्रलयकाल में भी ये दोनों तथा प्रकृति व्यक्त रूप से रहती हैं ॥२-३॥ हे द्विज !

---

१ क. कृष्णा कार्ष्ण्र्येन मे०। २ ख. ०ये प्रलये स्थि०।

सर्वादौ ब्रह्मकल्पस्य चरितं कथितं द्विज। वाराहपाद्मकल्पौ द्वौ कथयिष्यामि श्रोष्यसि ॥४॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च कल्पाश्च त्रिविधा मुने। यथा युगानि चत्वारि क्रमेण कथितानि च ॥५॥
सत्यं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्युगैर्दिव्यं युगं स्मृतम् ॥६॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। चतुर्दशेषु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥७॥
त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्दिनैर्वर्षं च ब्रह्मणः। अष्टोत्तरं वर्षशतं विधेरायुर्निरूपितम् ॥८॥
एतन्निमेषकालस्तु कृष्णस्य परमात्मनः। ब्रह्मणश्चाऽऽयुषा कल्पः कालविद्भिर्निरूपितः ॥९॥
क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्तादयः स्मृताः। सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयश्च तन्मतः ॥१०॥
ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्तितः। विधेश्च सप्तदिवसैर्मुनेरायुर्निरूपितम् ॥११॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः। कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय ॥१२॥
ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः। मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाऽऽज्ञया प्रभोः ॥१३॥
वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात्। विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चातिप्रयत्नतः ॥१४॥
पाद्मे विष्णोर्नाभिपद्मे स्रष्टा सृष्टिं विनिर्ममे। त्रिलोकीं ब्रह्मलोकान्तां नित्यलोकत्रयं विना ॥१५॥
एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे। किंचिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१६॥

(इस पुराण में) मैंने सब से पहले ब्रह्मकल्प के चरित्र का वर्णन किया है। अब वाराह कल्प और पाद्मकल्प इन दोनों का वर्णन करूँगा, सुनिए ॥४॥ हे मुने! ब्राह्म, वाराह, पाद्म के भेद से कल्प तीन प्रकार के होते हैं। जैसे सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चारों युग क्रम से कहे गए हैं, वैसे ही वे कल्प भी हैं। तीन सौ साठ युगों का एक 'दिव्य युग' होता है ॥५-६॥ एकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है और चौदह मनुओं के व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥७॥ ऐसे तीन सौ साठ दिनों के बीतने पर ब्रह्मा का एक वर्ष पूरा होता है। इस तरह के एक सौ आठ वर्षों की ब्रह्मा की आयु बतायी गयी है। परमात्मा कृष्ण का यही निमेष-काल कहा गया है। कालवेत्ताओं ने ब्रह्मा की आयु के बराबर 'कल्प' का मान निश्चित किया है ॥८-९॥ संवर्त आदि छोटे-छोटे कल्प तो अनेक हैं। मार्कण्डेय जी सात कल्पों तक जीने वाले बताये गए हैं ॥१०॥ किन्तु वह कल्प ब्रह्मा के एक दिन के बराबर ही बताया गया है। अतः ब्रह्मा के सात दिनों में मुनि (मार्कण्डेय) की आयु पूरी हो जाती है ॥११॥ ब्राह्म, वाराह और पाद्म यही तीन कल्प हैं और इन तीनों कल्पों में जिस प्रकार सृष्टि होती है, वह बताता हूँ, सुनो! ॥१२॥ ब्राह्म कल्प में मधु और कैटभ नामक दैत्यों के मेद (चर्बी) से पृथिवी का निर्माण करके स्रष्टा ने प्रभु श्रीकृष्ण की आज्ञा से सृष्टि-रचना की ॥१३॥ वाराह कल्प में जलमग्न एवं लुप्त हुई पृथिवी को वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु के द्वारा अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक रसातल से उसका उद्धार करवाया और सृष्टि-रचना की ॥१४॥ पश्चात् पाद्म कल्प में भगवान् विष्णु की नाभि-कमल पर स्रष्टा ने सृष्टि का निर्माण किया। ब्रह्मलोकपर्यन्त जो त्रिलोकी है, उसी की रचना की, ऊपर के जो नित्य तीन लोक हैं, उनकी नहीं ॥१५॥ सृष्टि-निरूपण के प्रसंग में मैंने यह कालगणना बतायी है और अंशतः सृष्टि का निरूपण किया है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥१६॥

शौनक उवाच

अतः परं किं चकार भगवान्सात्वतां पतिः। एतान्सृष्ट्वा किं चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१७॥

सौतिरुवाच

अतः परं तु गोलोके गोलोकेशो महान्प्रभुः। एतान्सृष्ट्वा जगामासौ रम्यं रासमण्डलम्।
एतैः समेतैर्भगवानतीव कमनीयकम् ॥१८॥
रम्याणां कल्पवृक्षाणां मध्येऽतीवमनोहरम्। सुविस्तीर्णं च सुसमं सुस्निग्धं मण्डलाकृति ॥१९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम्। दधिलाजसक्तुधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम् ॥२०॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तं नवचन्दनपल्लवैः। संयुक्तरम्भास्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम् ॥२१॥
सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः। रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः ॥२२॥
शृङ्गाराहंभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितम्। अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥२३॥
तत्र गत्वा च तैः सार्धं समुवास जगत्पतिः। दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम ॥२४॥
आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः। धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे ॥२५॥
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरे पुरः। तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥२६॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः। आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥२७॥
देवी षोडशवर्षीया नवयौवनसंयुता। वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा ॥२८॥

शौनक बोले—इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने क्या किया—किसकी सृष्टि की—बताने की कृपा करें ॥१७॥

सौति बोले—इसके उपरान्त गोलोकेश भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक में इन सब की सृष्टि करके अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर रासमण्डल में गए। वह रमणीय कल्पवृक्षों के मध्य मण्डलाकार रासमण्डल अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था ॥१८-१९॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से उसको सजाया गया था। उस पर दधि, लावा, सत्तू, धान्य और दूर्वादल बिखेरे गये थे। रेशमी सूत में गुंथे हुए नूतन चन्दन-पल्लवों की बन्दनवारों और केले के स्तम्भों से वह घिरा हुआ था। उत्तम रत्नों के सार भाग से सुरचित तीन करोड़ मंडप उस भूमि की शोभा बढ़ा रहे थे। उनके भीतर रत्नमय प्रदीप जल रहे थे। वे पुष्प और धूप से वासित थे ॥२०-२२॥ उनके भीतर अत्यन्त ललित प्रसाधन-सामग्री रखी हुई थी ॥२३॥ उन सब को साथ लिए भगवान् जगतीपति कृष्णचन्द्र वहाँ जाकर ठहरे। मुनिश्रेष्ठ! उस रास को देखकर वे सब अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे ॥२४॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई। वह दौड़ कर तुरन्त पुष्प ले आई और प्रभु कृष्ण को पग-पग पर अर्घ्य प्रदान करने लगी ॥२५॥ द्विजोत्तम! रास में उत्पन्न होकर गोलोक में भगवान् के सामने दौड़ने के कारण विद्वानों ने उसे 'राधा' कहा है ॥२६॥ वह परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी उनके प्राणों से प्रकट होने के कारण उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हुई ॥२७॥ वह देवी सोलह वर्ष की अवस्था एवं नवीन यौवन से सम्पन्न थी। अग्नि में तपाये हुए सुवर्ण की भाँति वस्त्रों को पहने हुए वह अत्यन्त रूपवती देवी मुसकरा रही थी ॥२८॥ उसके अंग

सुकोमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी। बृहन्नितम्बभारार्ता पीनश्रोणिपयोधरा ॥२९॥
बन्धुजीवजितारक्तसुन्दरोष्ठाधरानना । मुक्तापङ्क्तिजिताचारुदन्तपङ्क्तिर्मनोहरा ॥३०॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभामृष्टशुभानना । चारुसीमन्तिनी चारुशरत्पङ्कजलोचना ॥३१॥
खगेन्द्रचञ्चुविजितचारुनासामनोहरा । स्वर्णगण्डूकविजिते गण्डयुग्मे च बिभ्रती ॥३२॥
दधती चारुकर्णे च रत्नाभरणभूषिते। चन्दनागरुकस्तूरीयुक्तकुङ्कुमबिन्दुभिः ॥३३॥
सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा। सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम् ॥३४॥
सुगन्धकबरीभारं सुन्दरं दधती सती। स्थलपद्मप्रभामुष्टं पादयुग्मं च बिभ्रती ॥३५॥
गमनं कुर्वती सा च हंसखञ्जनगञ्जनम्। सद्रत्नसारनिर्माणां वनमालां मनोहराम् ॥३६॥
हारं हरिकनिर्माणं रत्नकेयूरकङ्कणम्। सद्रत्नसारनिर्माणं पाशकं सुमनोहरम् ॥३७॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। नानाप्रकारचित्राढ्यं सुन्दरं परिबिभ्रती ॥३८॥
सा च संभाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने वरे। उवास सस्मिता भर्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥३९॥
तस्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गनागणः। आविर्बभूव रूपेण वेषेणैव च तत्समः ॥४०॥
लक्षकोटीपरिमितः शश्वत्सुस्थिरयौवनः । संख्याविद्भिश्च संख्यातो गोलोके गोपिकागणः ॥४१॥

अत्यन्त कोमल थे। वह सुन्दरियों में भी सुन्दरी थी। वह विशाल नितम्ब के भार से थकी और स्थूल श्रोणी तथा स्तनों से शोभित थी। उसके बन्धूक (दुपहरिये) के पुष्प की भाँति रक्ताभ और सुन्दर ओष्ठ थे, मोतियों की पंक्ति के समान अत्यन्त मनोहर दाँतों की पंक्ति थी और शरत्कालीन कोटि चन्द्रों की शोभा को तिरस्कृत करने वाला मुख था। सीमन्त भाग बड़ा मनोहर था। शारदीय सुन्दर कमल की भाँति नेत्र दिखाई देते थे। उसकी मनोहर नासिका के सामने पक्षिराज गरुड़ की चोंच हार मान चुकी थी। वह बाला अपने दोनों कपोलों द्वारा सुनहरे दर्पण की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी। रत्नों के आभूषणों से विभूषित दोनों कान बड़े सुन्दर लगते थे। सुन्दर कपोलों पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और सिन्दूर की बूंदों से पत्र-रचना की गई थी, जिससे वह बड़ी सुन्दरी जान पड़ती थी। उसके सँवारे हुए केशपाश मालती की सुन्दर माला से अलंकृत थे। वह सती-साध्वी बाला अपने सिर पर सुन्दर एवं सुगन्धित वेणी धारण किये हुई थी। उसके दोनों चरण स्थल-कमलों की प्रभा को चुरा रहे थे। उसकी चाल हंस तथा खंजन के गर्व को चूर करने वाली थी। वह उत्तम रत्नों के सारभाग से बनी हुई मनोहर वनमाला, हीरे का बना हुआ हार, रत्न-निर्मित केयूर, कंगन, सुन्दर रत्नों के सारभाग से निर्मित अत्यन्त मनोहर पाशक (गले की जंजीर या कान का पासा), बहुमूल्य रत्नों का बना झनकारता हुआ मंजीर तथा अन्य नाना प्रकार के चित्रांकित सुन्दर जड़ाऊ आभूषण धारण किये हुई थी। वह श्रीकृष्ण से वार्तालाप करके उनकी आज्ञा पा मुसकराती हुई तथा स्वामी के मुखारविन्द को देखती हुई श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासन पर बैठ गई ॥२९-३९॥ उसी समय उसके लोम-कूपों से गोपांगनाओं का आविर्भाव हुआ, जो रूप और वेश में उसी के समान थीं ॥४०॥ एक लाख करोड़ उनकी संख्या थी और वे नित्य सुस्थिरयौवना थीं। विद्वानों ने गोलोक में गोपियों की उक्त संख्या ही बतायी हैं ॥४१॥ मुने! उसी प्रकार भगवान् कृष्ण के लोम

कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणो मुने। आविर्बभूव रूपेण वेषेणैव च तत्समः ॥४२॥
त्रिंशत्कोटिपरिमितः कमनीयो मनोहरः। संख्याविद्भिश्च संख्यातो बल्लवानां गणः श्रुतौ ॥४३॥
कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाऽऽविर्बभूव ह। नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनः ॥४४॥
बलीवर्दाः सुरभ्यश्च वत्सा नानाविधाः शुभाः। अतीवललिताः श्यामा बह्वचो वै कामधेनवः ॥४५॥
तेषामेकं बलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले। शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम् ॥४६॥
कृष्णाङ्घ्रिनखरन्ध्रेभ्यो हंसपङ्क्तिर्मनोहरा। आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंवत्ससमन्विता ॥४७॥
तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम्। वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने ॥४८॥
वामकर्णस्य विवरात्कृष्णस्य परमात्मनः। गणः श्वेततुरङ्गाणामाविर्भूतो मनोहरः ॥४९॥
तेषामेकं च श्वेताश्वं धर्मार्थं वाहनाय च। ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंसदि ॥५०॥
दक्षकर्णस्य विवरात्पुंसश्च सुरसंसदि। आविर्भूता सिंहपङ्क्तिर्महाबलपराक्रमा ॥५१॥
तेषामेकं ददौ कृष्णः प्रकृत्यै परमादरम्। अमूल्यरत्नमाल्यं च वरं यदभिवाञ्छितम् ॥५२॥
कृष्णो योगेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम्। शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम् ॥५३॥
लक्षयोजनमूर्ध्वे च प्रस्थे च शतयोजनम्। लक्षचक्रं वायुरहं लक्षक्रीडागृहान्वितम् ॥५४॥
शृङ्गारार्हं भोगवस्तुतल्पासंख्यसमन्वितम्। रत्नप्रदीपलक्षाणां[1] राजिभिश्च विराजितम् ॥५५॥

विवर से भी तुरन्त गोपगण प्रकट हुए, जो रूप और वेश में उन्हीं के समान थे ॥४२॥ विद्वानों का कहना है कि श्रुति में गोलोक के कमनीय एवं मनोहर रूप वाले गोपों की संख्या तीस करोड़ बतायी गई है ॥४३॥ उसी प्रकार तत्काल ही भगवान् कृष्ण के लोम-कूप से नित्य सुस्थिर यौवन वाली अनेक वर्ण की गौएँ प्रकट हुईं ॥४४॥ उनमें बलीवर्द (साँड़), सुरभी जाति की गौएँ और अनेक भाँति के सुन्दर बछड़े थे तथा अत्यन्त ललित अनेकों श्यामा कामधेनु गौएँ थीं ॥४५॥ भगवान् कृष्ण ने उन्हीं में से एक मनोहर बैल को, जो करोड़ों सिंह के समान बलवान् था, शंकर को सवारी के लिए दे दिया ॥४६॥ पुनः भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-नख के छिद्रों से सहसा सुन्दर हंसों की पंक्ति उत्पन्न हुई, जिसमें स्त्री-पुरुष (नर-मादा) सभी थे। उनमें से एक महापराक्रमी राजहंस को भगवान् कृष्ण ने तपस्वी ब्रह्मा को वाहनार्थ प्रदान किया ॥४७-४८॥ परमात्मा कृष्ण के बायें कर्ण विवर से श्वेत वर्ण के अश्वों का समूह उत्पन्न हुआ ॥४९॥ गोपांगनाओं के अधिपति भगवान् कृष्ण ने उस सभा के भीतर बड़ी प्रसन्नता से एक श्वेत अश्व देवसभा में विराजमान धर्म को वाहन के लिए प्रदान किया ॥५०॥ पुनः उस पुरुष के दाहिने कर्ण-विवर से उस सुर-सभा के भीतर ही महाबली और पराक्रमी सिंहों की श्रेणी उत्पन्न हुई ॥५१॥ उनमें से एक को कृष्ण ने प्रसन्नता वश प्रकृति (दुर्गा) को सौंप दिया और अमूल्य रत्नों की माला एवं इच्छित वरदान भी दिया ॥५२॥ अनन्तर योगीन्द्र कृष्ण ने योगबल से पाँच रथ उत्पन्न किए, जो शुद्ध रत्नों के बने, मनोहर और मन के समान चलने वाले थे ॥५३॥ उनकी ऊँचाई एक लाख योजन की थी और विस्तार सौ योजन का था। उनमें एक लाख चक्के थे जो वायु के समान चलने वाले थे और उनमें एक-एक लाख क्रीड़ा-गृह, शृंगारोचित भोग-वस्तुएँ और असंख्य शय्यायें थीं। लाखों रत्नमय प्रदीपों और अश्वों से वे (रथ) सुसज्जित थे ॥५४-५५॥ अनेक भाँति के विचित्र चित्र उनमें अंकित

---

१ ख. ०णां वाजि०।

नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् । रत्नदर्पणभूषाढ्यं शोभितं श्वेतचामरैः ॥५६॥
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रैर्मुक्ताजालैर्विभूषितम् । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारविराजितम् ॥५७॥
आरक्तवर्णरत्नेन्द्रसारनिर्माणकृत्रिमैः । पङ्कजानामसंख्यैश्च सुन्दरैश्च सुशोभितम् ॥५८॥
ददौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम। एकं दत्त्वा राधिकायै ररक्ष शेषमात्मने ॥५९॥
आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम्। पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥६०॥
आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यकाः स्मृताः। यः पुमान्स कुबेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः ॥६१॥
बभूव कन्यका चैका कुबेरवामपार्श्वतः। कुबेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा ॥६२॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डब्रह्मराक्षसाः। वेताला विकृतास्तस्याऽऽविर्भूता गुह्यदेशतः ॥६३॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः । पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥६४॥
किरीटिनः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः । आविर्भूताः पार्षदाश्च कृष्णस्य मुखतो मुने ॥६५॥
चतुर्भुजान्पार्षदांश्च ददौ नारायणाय च । गुह्यकान्गुह्यकेशाय भूतादीञ्छंकराय च ॥६६॥
द्विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः। ध्यायन्तश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य सततं मुदा ॥६७॥
दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्घ्यमादाय यत्नतः। आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥६८॥

थे। वे उत्तम रत्नों के कलशों से उज्ज्वल तथा रत्न के दर्पणों एवं आभूषणों और श्वेत चामरों से सुशोभित थे ॥५६॥ अग्नि में तपाये गये (सुवर्ण) की भाँति वस्त्रों, चित्र-विचित्र मुक्तामालाओं तथा मणियों, मोतियों और हीरों के हारों से विभूषित थे ॥५७॥ रक्तवर्ण के उत्तम रत्नों के तत्त्वों से सुरचित, असंख्य एवं सुन्दर कमलों से वे अलंकृत थे ॥५८॥ द्विजोत्तम ! भगवान् कृष्ण ने उनमें से एक नारायण को और एक श्रीराधा जी को देकर शेष अपने लिए सुरक्षित रख लिए ॥५९॥ अनन्तर भगवान् कृष्ण के गुह्य स्थान से एक पिंगल वर्ण का पुरुष पिंगलगणों के साथ उत्पन्न हुआ ॥६०॥ गुप्त स्थान से प्रकट होने के कारण वे सब 'गुह्यक' कहलाये। उनमें वह पुरुष धन का ईश और गुह्यकों का अधिपति हुआ ॥६१॥ कुबेर के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी देवी कुबेर की पत्नी हुई ॥६२॥ भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस और वेताल भी उन्हीं के गुह्य स्थान से प्रकट हुए ॥६३॥ मुने ! तदनन्तर श्रीकृष्ण के मुख से कुछ पार्षदों का प्राकट्य हुआ। वे सब शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और पीताम्बर धारण किए हुए श्यामवर्ण और चतुर्भुज थे ॥६४॥ किरीट, कुण्डल और रत्नों के आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥६५॥ भगवान् ने चार भुजाधारी पार्षद नारायण को दे दिए। उसी प्रकार गुह्य कुबेर को और भूत, प्रेत आदि शंकर को समर्पित किए ॥६६॥ तदुपरान्त श्रीकृष्ण के चरणारविन्द से द्विभुज पार्षद प्रकट हुए, जो श्याम वर्ण के थे और हाथों में जपमाला लिये हुए थे। वे श्रेष्ठ पार्षद निरन्तर आनन्दपूर्वक भगवान् के चरणकमलों का ही चिन्तन करते थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें दास्यकर्म में नियुक्त किया। वे दास यत्नपूर्वक अर्घ्य लिए प्रकट हुए थे। वे सभी श्रीकृष्णपरायण वैष्णव थे। उनके सारे अंग पुलकित थे, नेत्रों से आँसू झर रहे थे और वाणी गद्गद थी। उनका

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः । आविर्भूताः पादपद्मात्पादपद्मैकमानसाः ॥६९॥
आविर्बभूवुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयङ्कराः । त्रिशूलपट्टिशधरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥७०॥
दिगम्बरा महाकाया ज्वलदग्निशिखोपमाः । ते भैरवा महाभागाः शिवतुल्याश्च तेजसा ॥७१॥
रुरुसंहारकालाख्या असितक्रोधभीषणाः । महाभैरवखट्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः ॥७२॥
आविर्बभूव कृष्णस्य वामनेत्राद्भयंकरः । त्रिशूलपट्टिशव्याघ्रचर्माम्बरगदाधरः ॥७३॥
दिगम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः । स ईशानो महाभागो दिक्पालानामधीश्वरः ॥७४॥
डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः । आविर्बभूवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात् ॥७५॥
सुरास्त्रिकोटिसंख्याता दिव्यमूर्तिधरा वराः। आविर्बभूवुः सहसा पुंसो वै पृष्ठदेशतः ॥७६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
सृष्टिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

सौतिरुवाच

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरं च सरस्वतीम्। नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रं मालया सह ॥१॥

चित्त केवल भगवच्चरणारविन्दों के चिन्तन में ही संलग्न था ॥६७-६९॥ भगवान् कृष्ण के दाहिने नेत्र से ऐसे भीषण लोगों की उत्पत्ति हुई, जो हाथों में त्रिशूल और पट्टिश लिए हुए थे। उन सब के तीन नेत्र थे और वे सिर पर चन्द्राकार मुकुट धारण किये हुए थे। वे सब के सब महाकाय, दिगम्बर और प्रज्वलित अग्नि के समान (तेजस्वी) थे। वे महाभाग भैरव कहलाये। वे तेज में शिव के समान ही थे ॥७०-७१॥ रुद्र, संहार, काल, असित, क्रोध, भीषण, महाभैरव और खट्वांग, ये आठ भैरव बताये गए हैं ॥७२॥ भगवान् कृष्ण के बायें नेत्र से एक भयंकर पुरुष की उत्पत्ति हुई, जो त्रिशूल, पटिट्श, बाघम्बर और गदा धारण किए हुए था। वह दिगम्बर, महाकाय, त्रिनेत्र और चन्द्राकार मुकुट धारण करने वाला था। उस महाभाग को ईशान कहा गया है। वही दिक्पालों का अधिनायक भी है ॥७३-७४॥ भगवान् कृष्ण के नासिका छिद्र से डाकिनियाँ, योगिनियाँ और सहस्रों क्षेत्रपाल प्रकट हुए ॥७५॥ उसी भाँति उनके पृष्ठदेश से तीन करोड़ की संख्या में देवगण उत्पन्न हुए, जो दिव्य मूर्ति एवं श्रेष्ठ थे ॥७६॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में सृष्टि-निरूपण नामक
पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

अध्याय ६

श्रीकृष्ण द्वारा नारायण आदि को लक्ष्मी आदि का पत्नीरूप में दान

सौति बोले—पश्चात् भगवान् कृष्ण ने नारायण को सादर महालक्ष्मी सरस्वती एवं परमोत्तमरत्नों की

सावित्रीं ब्रह्मणे प्रादान्मूर्तिं धर्माय सादरम् । । रतिं कामाय रूपाढ्यां कुबेराय मनोरमाम् ॥२॥
अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः । तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम् ॥३॥
ततः शंकरमाहूय सर्वेशो योगिनां गुरुम् । उवाच प्रियमित्येवं गृहणीयाः सिंहवाहिनीम् ॥४॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रहसन्नीललोहितः । उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमच्युतम् ॥५॥

श्रीमहेश्वर उवाच

अधुनाऽहं च गृह्णामि प्रकृतिं प्राकृतो यथा । त्वद्भक्त्यैकव्यवहितां दास्यमार्गविरोधिनीम् ॥६॥
तत्त्वज्ञानसमाच्छन्नां योगद्वारकपाटिकाम् । मुक्तीच्छाध्वंसरूपां च सकामां कामवर्धिनीम् ॥७॥
तपस्याच्छन्नरूपां च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम् ॥८॥
शश्वद्दुर्बुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्विभोगसारां[1] च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम् ॥९॥
नेच्छामि गृहिणीं नाथ वरं देहि मदीप्सितम् । यस्य यद्वाञ्छितं तस्मै तद्ददाति तदीश्वरः ॥१०॥
त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्धतेऽनिशम् । तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११॥
त्वन्नाम पञ्चवक्त्रेण गुणं सन्मङ्गलालयम् । स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन्गायन्भ्रमाम्यहम् ॥१२॥
आकल्पकोटि कोटिं च त्वद्रूपध्यानतत्परम् । भोगेच्छाविषये नैव योगे तपसि मन्मनः ॥१३॥

माला भी सौंप दी। उसी भाँति ब्रह्मा को सावित्री, धर्म को मूर्ति, काम को रति, कुबेर को रूपवती मनोरमा सादर समर्पित की। और इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने अन्य स्त्रियों को भी पतियों के हाथ में दिया। जो जिससे उत्पन्न हुई थी, उस रूपवती सती को उसी पति को सौंप दिया। अनन्तर सर्वाधीश्वर कृष्ण ने योगियों के गुरु शंकर जी को बुला कर अत्यन्त प्रेम से कहा—'आप इस सिंहवाहिनी को ग्रहण कीजिए' ॥१-४॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बात सुनकर नीललोहित शिव हँसे और डरते हुए विनीत भाव से उन प्राणेश, प्रभु, अच्युत भगवान् से बोले ॥५॥

श्री महेश्वर ने कहा—साधारण पुरुष की भाँति मैं भी इस समय इस प्रकृति का ग्रहण करने में असमर्थ हूँ। क्योंकि यह आपकी भक्ति को दूर करने वाली, सेवा मार्ग की विरोधिनी, तत्त्वज्ञान को आच्छन्न करने वाली, योगरूपी द्वार का किवाड़, मुक्ति की इच्छा का ध्वंस करने वाली, कामुकी तथा काम (भोग) को बढ़ाने वाली है ॥६-७॥ यह तपस्या का लोप करने वाली, महामोह की टोकरी, संसार रूपी भयंकर कारागार की सुदृढ़ बेड़ी, निरन्तर दुर्बुद्धि की जननी, सद्बुद्धि का नाश करने वाली, निरन्तर भोगतत्त्व से हीन और विषयेच्छा को बढ़ाने वाली है ॥८-९॥ नाथ ! इसलिए मुझे गृहिणी की इच्छा नहीं है। मैं कुछ मनइच्छित वरदान चाहता हूँ उसे देने की कृपा करें। क्योंकि जिसकी जो वस्तु अभिलषित होती है, ईश्वर उसे वही प्रदान करता है ॥८-१०॥ आपकी भक्ति के विषय में मेरी लालसा दिनरात बढ़ती रहती है, एवं आपके चरण की सेवा और नाम जपने से मुझे कभी तृप्ति नहीं होती है ॥११॥ शयन करते और जागते—हर समय मैं अपने पाँचों मुखों से सन्मंगलों के धाम आपके नाम-गुण का गान गाते हुए चारों ओर घूमता रहता हूँ ॥१२॥ कोटि-कोटि कल्पों तक मैं आपके रूप के ध्यान में तल्लीन रहता हूँ, इसलिए मुझे विषय-भोग की इच्छा नहीं है। योग और तप में मेरा मन लगा रहता है ॥१३॥ आपकी सेवा,

---

१ क. ०साध्यां च वि।

त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्तने। सदोल्लसितमेषा च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१४॥
स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः। त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥१५॥
समर्पणं चाऽऽत्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरं वरेश देहीदं नवधाभक्तिलक्षणम् ॥१६॥
सार्ष्टिसालोक्यसारूप्यसामीप्यं साम्यलीनताम्। वदन्ति षड्विधां मुक्तिं मुक्ता मुक्तिविदो विभो ॥१७॥
अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावसायिता ॥१८॥
सार्वज्ञं दूरश्रवणं परकायप्रवेशनम् । वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्त्रष्टुं संहर्तुमीशता ॥१९॥
अमरत्वं च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादश स्मृताः। योगास्तपांसि सर्वाणि दानानि च व्रतानि च ॥२०॥
यशः कीर्तिर्वचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च। भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यसुरार्चनम् ॥२१॥
सुरार्चादर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम् । स्नानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥२२॥
ब्रह्मत्वं चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वं च परं पदम्। अतोऽनिर्वचनीयानि वाञ्छनीयानि सन्ति वा ॥२३॥
सर्वाण्येतानि सर्वेश कथितानि च यानि च। तव भक्तिकलांशस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२४॥
शर्वस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरुम्। प्रहस्योवाच वचनं सत्यं सर्वसुखप्रदम् ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदां वर। कल्पकोटिशतं यावत्पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥२६॥

पूजा, वन्दना और नाम-कीर्तन में मेरा मन सदैव उल्लसित रहता है। इनसे विरत होने पर यह उद्विग्न हो उठता है ॥१४॥ वरों के ईश्वर! आपके नाम और गुण का स्मरण करना, कीर्तन, श्रवण, जप, आपके सुन्दर रूप का ध्यान, आपके चरणों की सेवा, वन्दना, आत्म-समर्पण, नित्य नैवेद्य का भोजन—यही नव प्रकार की भक्ति मुझे प्रदान करने की कृपा करें ॥१५-१६॥ विभो! मोक्ष और अमोक्ष के वेत्ताओं ने सार्ष्टि (ईश्वर के समान सृष्टि करने की शक्ति), सालोक्य (ईश्वर के समान लोक में रहना), सामीप्य (ईश्वर के समीप रहना), सारूप्य (ईश्वर के समान स्वरूप प्राप्त करना) साम्य (आपकी समता की प्राप्ति) और लीन होना—यही छह प्रकार की मुक्ति बतायी है ॥१७॥ अणिमा (सूक्ष्म रूप), लघिमा (लघु होना), प्राप्ति (किसी भी वस्तु को प्राप्त कर लेना), प्राकाम्य (इच्छा का अभिघात न होना), महिमा (महान् बन जाना), ईशित्व (अधीश्वर होना), वशित्व (वश में करना), सर्वकामावसायिता (समस्त कामनाओं को नष्ट करना), सर्वज्ञता, दूर श्रवण (अत्यन्त दूर से भी सभी बातें सुनना), परकाय-प्रवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेश करना), वाक् सिद्धि (सभी बातें सत्य होना), कल्पवृक्षत्व (कल्पवृक्ष की भाँति मनइच्छित फल प्रदान करना), सृष्टि और संहार की क्षमता, अमर होना और सब का अग्रणी या सर्वश्रेष्ठ होना, ये अठारह प्रकार की सिद्धियाँ हैं। योग, तप, सब प्रकार के दान, व्रत, यश, कीर्ति, सत्यवाणी, उपवास, समस्त तीर्थों में भ्रमण और स्नान, अन्य देवों की अर्चना, देव-पूजा, दर्शन, सातों द्वीपों की सात प्रदक्षिणा, सभी समुद्रों के स्नान, सभी स्वर्गों के दर्शन, ब्रह्मपद, रुद्रपद, विष्णुपद एवं परम पद तथा सभी अनिर्वचनीय अभिलषित पदार्थ आपकी भक्ति के कलांश की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ॥१८-२४॥ योगियों के गुरु (महादेव) की बातें सुन कर उनसे भगवान् कृष्ण हँसते हुए समस्त सुखदायक सत्य वचन बोले ॥२५॥

श्री भगवान् बोले—निखिल ज्ञाताओं में श्रेष्ठ सर्वेश्वर शिव! तुम सौ करोड़ कल्पों तक दिनरात निरन्तर

वरस्तपस्विनां त्वं च सिद्धानां योगिनां तथा। ज्ञानिनां वैष्णवानां च सुराणां च सुरेश्वर ॥२७॥
अमरत्वं लभ[1] भव भव मृत्युंजयो महान्। सर्वसिद्धिं च वेदांश्च सर्वज्ञत्वं च मद्वरात् ॥२८॥
असंख्यं ब्रह्मणां पातं लीलया वत्स पश्यसि। अद्यप्रभृति ज्ञानेन तेजसा वचसा शिव ॥२९॥
पराक्रमेण यशसा महसा मत्समो भव। प्राणानामधिकस्त्वं च न भक्तस्त्वपरो मम ॥३०॥
त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः। ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतनाः ॥३१॥
पच्यन्ते ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। कल्पकोटिशतान्ते च ग्रहीष्यसि शिवां शिव ॥३२॥
ममाव्यर्थं च वचनं पालनं कर्तुमर्हसि। त्वन्मुखान्निर्गतं वाक्यं न करोम्यधुनेति च ॥३३॥
मद्वाक्यं च स्ववाक्यं च पालनं तत्करिष्यसि। गृहीत्वा प्रकृतिं शंभो दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥३४॥
सुखं महच्च शृङ्गारं करिष्यसि न संशयः। न केवलं तपस्वी त्वमीश्वरो मत्समो[2] महान् ॥३५॥
काले गृही तपस्वी च योगी स्वेच्छामयो हि यः। दुःखं च दारसंयोगे यत्त्वया कथितं शिव ॥३६॥
कुस्त्री ददाति दुःखं च स्वामिने न पतिव्रता। कुले महति या जाता कुलजा कुलपालिका ॥३७॥
करोति पालनं स्नेहात्सत्पुत्रस्य समं पतिम्। पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलयोषिताम् ॥३८॥
पतितोऽपतितो वाऽपि कृपणश्चेश्वरोऽथवा। असत्कुलप्रसूता याः पित्रोर्दुःशीलमिश्रिताः ॥३९॥

मेरी सेवा करो ॥२६॥ सुरेश्वर! तुम तपस्वियों, सिद्धों, योगियों, ज्ञानियों, वैष्णवों और देवों में सर्वश्रेष्ठ हो ॥२७॥ भव! अमरत्व प्राप्त करो और महान् मृत्युजेता बनो। उसी भाँति हमारे वरदान द्वारा समस्त सिद्धियाँ, चारों वेद (का ज्ञान) तथा सर्वज्ञता प्राप्त करो। वत्स! उससे असंख्य ब्रह्माओं का पतन अनायास ही देखते रहोगे। शिव! आज से ही तुम मेरे समान ज्ञान, तेज, अवस्था, पराक्रम, यश तथा तेज प्राप्त करो। क्योंकि तुम मेरे प्राण से भी अधिक प्रिय हो, अतः तुमसे बढ़ कर मेरा कोई भक्त नहीं है ॥२८-३०॥ तुम मेरे आत्मा से भी बढ़ कर हो। (इस-लिए) तुमसे अधिक प्रिय मेरा कोई नहीं है। जो पापिष्ठ, अज्ञानी और चेतनाहीन मनुष्य तुम्हारी निन्दा करते हैं, वे तब तक कालसूत्र में पकाये जाते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति रहती है। शिव! सौ करोड़ कल्पों के उपरांत तुम शिवा (प्रकृति) का ग्रहण करोगे ॥३१-३२॥ अतः मेरे इन सार्थक वचनों का पालन करो। मैं तुम्हारी इस समय की बात मानने को तैयार नहीं हूँ। शम्भो! मेरी बात और अपनी उस बात का पालन उस समय करोगे, जब प्रकृति को अपनाकर दिव्य सहस्र वर्षों तक महान् सुख और शृंगार रस का आस्वादन करोगे, इसमें संशय नहीं। तुम केवल तपस्वी ही नहीं हो प्रत्युत मेरे समान महान् ईश्वर भी हो ॥३३-३५॥ जो स्वेच्छामय ईश्वर है वह समय पर गृही, तपस्वी और योगी हुआ करता है। शिव स्त्री के साथ रहने में जो दुःख आपने बताया है उसमें निन्दित स्त्रियाँ ही अपने पति को दुःख देती हैं न कि पतिव्रता। जो प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुई है, कुलीना और कुल-मर्यादा का पालन करने वाली है, वह अच्छे पुत्र की भाँति अधिक स्नेह से पति का पालन करती है। क्योंकि सत्कुल में उत्पन्न होनेवाली स्त्रियों का पति ही बन्धु, पति ही भर्त्ता और पति ही देवता है चाहे वह पतित, अपतित, दीन-हीन अथवा ऐश्वर्यशाली क्यों न हो। और असत्कुल में उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ, जिनमें उनके माँ-बाप का बुरा

---

[1] क. ०मत्वं च भ०। [2] क. मो भवान्।

ध्रुवं ताः परभोग्याश्च पतिं निन्दन्ति संततम् । आवयोरतिरिक्तं च या पश्यति पतिं सती ॥४०॥
गोलोके स्वामिना सार्द्धं कोटिकल्पं प्रमोदते । भविता सा शिवा शैवी प्रकृतिर्वैष्णवी शिव ॥४१॥
मदाज्ञया च तां साध्वीं ग्रहीष्यसि भवाय च । प्रकृत्या योनिसंयुक्तं त्वल्लिङ्गं तीर्थमृत्कृतम् ॥४२॥
तीर्थे सहस्रं संपूज्य भक्त्या पञ्चोपचारतः । सदक्षिणं संयतो यः पवित्रश्च जितेन्द्रियः ॥४३॥
कोटिकल्पं च गोलोके मोदते च मया सह । लक्षं तीर्थे पूजयेद्यो विधिवत्साधुदक्षिणम् ॥४४॥
न च्युतिस्तस्य गोलोकात्स भवेदावयोः समः । मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तीर्थवालुकयाऽपि वा ॥४५॥
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि । प्रजावान्भूमिमान्विद्वान्पुत्रवान्धनवांस्तथा ॥४६॥
ज्ञानवान्मुक्तिमान्साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत् । शिवलिङ्गार्चनस्थानमतीर्थं तीर्थमेव तत् ।
भवेत्तत्र मृतः पापी शिवलोकं स गच्छति ॥४७॥
महादेव महादेव महादेवेति वादिनः । पश्चाद्यामि महास्तोत्रनामश्रवणलोभतः ॥४८॥
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः ॥४९॥
शिवकल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचकम् । यतस्तत्प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः ॥५०॥
विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसागरे । शिवेति शब्दमुच्चार्य लभेत्सर्वशिवं नरः ॥५१॥

स्वभाव मिश्रित रहता है, निश्चित ही परभोग्या (व्यभिचारिणी) होती हैं तथा वे ही सदैव पति की निन्दा भी करती हैं। जो सती स्त्री हम दोनों से भी बढ़कर पति को देखती है, वह गोलोक में अपने पति समेत कोटिकल्प तक सुख प्राप्त करती है। शिव ! वह वैष्णवी प्रकृति शिवप्रिया होकर तुम्हारे लिए कल्याणमयी होगी ॥३६-४१॥ मेरी आज्ञा से तुम लोक-कल्याण के निमित्त उस पतिव्रता को पत्नीरूप में ग्रहण करो। तीर्थों की मिट्टियों से प्रकृति के साथ योनि युक्त तुम्हारे लिंग का निर्माण कर जो संयमी जितेन्द्रिय पुरुष तीर्थ-स्थानों में उसकी एक सहस्र संख्या का पंचोपचार से विधिपूर्वक दक्षिणा समेत पूजन करता है वह गोलोक में मेरे साथ एक करोड़ कल्प तक आनन्द करता है । इसी भाँति जो तीर्थ में सविधान और उचित दक्षिणा समेत एक लक्ष शिवलिंग (पार्थिव) का पूजन करता है, उसकी च्युति गोलोक से कभी नहीं होती है और वह हम लोगों के समान हो जाता है। इसलिए मिट्टी, भस्म, गोबर अथवा तीर्थ की बालुका से लिंग बना कर एक बार पूजन करने से दश सहस्र कल्प तक स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है। सज्जन पुरुष शिवलिंग की अर्चना करने से प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, धन, ज्ञान और मुक्ति प्राप्त करता है। शिवलिंग की पूजा होने से अतीर्थ भी तीर्थ हो जाता है और वहाँ पापी की मृत्यु होने पर शिवलोक को जाता है ॥४२-४७॥ 'महादेव, महादेव, महादेव' ऐसा कहने वाले के पीछे महान् स्तोत्र रूप नाम सुनने के लोभ से मैं जाता हूँ ॥४८॥ 'शिव-शिव' शब्द का उच्चारण करते हुए जो मनुष्य प्राण त्याग करता है वह कोटि जन्मों के संचित पापों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है ॥४९॥ 'शिव' शब्द कल्याण का वाचक है और 'कल्याण' शब्द मोक्ष का। शिव के उच्चारण से मोक्ष या कल्याण की प्राप्ति होती है, इसीलिए महादेव को शिव कहा गया है ॥५०॥ धन और बन्धुओं के नाश हो जाने पर शोकसागर में निमग्न होने वाला मनुष्य 'शिव' शब्द के उच्चारण करने से कल्याण का भागी होता है ॥५१॥ (शिव शब्द में) 'शि' वर्ण पापनाशक और 'व' मुक्तिप्रदायक है।

पापघ्ने वर्तते शिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा। पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रकीर्तितः ॥५२॥
शिवेति च शिवं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥५३॥
इत्युक्त्वा शूलिने कृष्णो दत्त्वा कल्पतरुं मनुम्। तत्त्वज्ञानं मृत्युंजयमवोचत्सिंहवाहिनीम् ॥५४॥

श्रीभगवानुवाच

अधुना तिष्ठ वत्से त्वं गोलोके मम संनिधौ। काले भजिष्यसि शिवं शिवदं च शिवायनम् ॥५५॥
तेजःसु[1] सर्वदेवानामाविर्भूय वरानने। संहृत्य दैत्यान्सर्वांश्च भविता सर्वपूजिता ॥५६॥
ततः कल्पविशेषे च सत्यं सत्ययुगे सति। भविता दक्षकन्या त्वं सुशीला शंभुगेहिनी ॥५७॥
ततः शरीरं संत्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया। मेनायां शैलभार्यायां भविता पार्वतीति च ॥५८॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च विहरिष्यसि शंभुना। पूर्णं[2] ततः सर्वकालमभेदं त्वं लभिष्यसि ॥५९॥
काले सर्वेषु विश्वेषु महापूजा सुपूजिते। भविता प्रतिवर्षे च शारदीया सुरेश्वरि ॥६०॥
ग्रामेषु नगरेष्वेव पूजिता ग्रामदेवता। भवती भवितेत्येवं नामभेदेन चारुणा ॥६१॥
मदाज्ञया शिवकृतैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि। पूजाविधिं विधास्यामि कवचं स्तोत्रसंयुतम् ॥६२॥
भविष्यन्ति महान्तश्च तवैव परिचारकाः। धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धाश्च फलभागिनः ॥६३॥

इसलिए मनुष्यों के पापनाशक एवं मोक्षदाता होने के कारण वे 'शिव' कहे गये हैं।॥५२॥ शिव का यह 'शिव' नाम जिसकी वाणी में (सदैव) वर्तमान रहता है, उसका कोटिजन्मों का अर्जित पाप निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है ॥५३॥ इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने शूलधारी शंकर से कहकर उन्हें कल्पवृक्ष के समान मंत्र और मृत्युञ्जय तत्त्वज्ञान प्रदान किया। पश्चात् सिंहवाहिनी प्रकृति से वे बोले ॥५४॥

श्री भगवान् बोले—वत्से! इस समय तुम मेरे साथ गोलोक में रहो। फिर समय आने पर तुम कल्याण-प्रद और कल्याण-निधि शंकर की सेवा करोगी ॥५५॥ समस्त देवों की तेजोराशि से प्रकट होकर समस्त दैत्यों का वध करके तुम सबकी पूजनीया होगी ॥५६॥ पश्चात् किसी विशेष कल्प में सत्य युग के आने पर तुम दक्ष की कन्या होकर शिव की भार्या बनोगी ॥५७॥ अनन्तर दक्ष के यज्ञ में पति की निन्दा से तुम शरीर का त्याग करके हिमालयपत्नी मेना की पार्वती नामक पुत्री होगी ॥५८॥ शिव के साथ एक सहस्र दिव्य वर्षों तक विहार करने के उपरान्त तुम सर्वदा के लिए पति के साथ पूर्णतः अभिन्नता प्राप्त कर लोगी ॥५९॥ सुरेश्वरी! प्रतिवर्ष प्रशस्त समय में समस्त लोकों में तुम्हारी शरत्कालिक पूजा होगी। ग्रामों और नगरों में तुम ग्रामदेवता के रूप में पूजित होगी तथा विभिन्न स्थानों में तुम्हारे पृथक्-पृथक् मनोहर नाम होंगे ॥६०-६१॥ मेरी आज्ञा से शिव द्वारा रचित अनेक भाँति के तन्त्रों से तुम्हारी पूजा की जाएगी। मैं तुम्हारे लिए स्तोत्र और कवच का विधान करूँगा ॥६२॥ जिससे तुम्हारी ही सेवा करने वाले सेवकगण महत्ता प्राप्त करेंगे तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप फल के भागी होंगे ॥६३॥

---

१ ख.० तेजसा स०। २ क. पूर्णा ततः सर्वकालं ममैव त्वं भविष्यसि। का०।

ये त्वां मातर्भजिष्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते। तेषां यशश्च [1]कीर्तिश्च धर्मैश्वर्यं च वर्द्धते॥६४॥
इत्युक्त्वा प्रकृतिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम्। दत्त्वा सकामबीजं च मन्त्रराजमनुत्तमम्॥६५॥
चकार विधिना ध्यानं भक्तं भक्तानुकम्पया। श्रीमायाकामबीजाढ्यं ददौ मन्त्रं दशाक्षरम्॥६६॥
सृष्ट्यौपयौगिकीं शक्तिं सर्वसिद्धिं च कामदाम्। तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वं ज्ञानं तस्यै ददौ विभुः॥६७॥
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं दत्त्वा तस्मै जगत्पतिः। कवचं स्तोत्रसहितं शंकराय तथा द्विज॥६८॥
दत्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च। कामाय वह्नये चैव कुबेराय च वायवे॥६९॥
एवं कुबेरादिभ्यस्तु दत्त्वा मन्त्रादिकं परम्। विधिं प्रोवाच सृष्टयर्थं विधातुर्विधिरेव सः॥७०॥

श्रीभगवानुवाच

मदीयं च तपः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रकम्। सृष्टिं कुरु महाभाग विधे नानाविधां पराम्॥७१॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौ मालां मनोरमाम्। जगाम सार्धं गोपीभिर्गोपैर्वृन्दावनं वनम्॥७२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
सृष्टिनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

मातः! पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में जो लोग तुम्हारी सेवा करेंगे, उनके यश, कीर्ति, धर्म और ऐश्वर्य की वृद्धि होगी॥६४॥ इतना कह कर भगवान् कृष्ण ने उसे कामबीज (क्लीं) सहित एकादशाक्षर मन्त्र प्रदान किया, जो परमोत्तम एवं मन्त्रराज है॥६५॥ पुनः विधिपूर्वक ध्यान का उपदेश दिया तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए श्री (श्रीं) माया (ह्रीं) तथा काम (क्लीं) बीज सहित दशाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया। साथ ही सृष्टि की उपयोगी शक्ति, कामनाओं को सफल करने वाली समस्त सिद्धियाँ और उत्कृष्ट तत्त्वज्ञान भी उसे प्रदान किये॥६६-६७॥ द्विजो, उसी प्रकार विभु जगदीश्वर ने शंकर जी को त्रयोदशाक्षर मंत्र और स्तोत्रसमेत कवच प्रदान किया॥६८॥ पुनः धर्म को वही मन्त्र एवं सिद्धि-ज्ञान देकर उन्होंने कामदेव, अग्नि, कुबेर और वायु को भी मन्त्र आदि प्रदान किये॥६९॥ इस प्रकार कुबेरादिकों को मन्त्रादि प्रदान करने के उपरान्त विधाता के भी विधाता भगवान् श्रीकृष्ण ने सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा से कहा॥७०॥

श्री भगवान् बोले—महाभाग! विधे! सहस्र दिव्य वर्षों तक मेरा तप करके तुम अनेक भाँति की सृष्टि करो॥७१॥ इतना कहकर भगवान् कृष्ण ने उन्हें एक मनोरम माला प्रदान की। पश्चात् गोप-गोपियों को साथ लेकर वे (दिव्य) वृन्दावन में चले गये॥७२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में सृष्टिनिरूपण नामक
छठा अध्याय समाप्त॥६॥

---

१ ख.० र्तिः श्रीर्धनैश्च०।

अथ सप्तमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

ब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम्। ससृजे पृथिवीमादौ मधुकैटभमेदसा ॥१॥
ससृजे पर्वतानष्टौ प्रधानान्सुमनोहरान्। क्षुद्रानसंख्यान्किं ब्रूमः प्रधानाख्यां निशामय ॥२॥
सुमेरुं चैव कैलासं मलयं च हिमालयम्। उदयं च तथाऽस्तं च सुवेलं गन्धमादनम् ॥३॥
समुद्रान्ससृजे सप्त नदान्कतिविधा नदीः। वृक्षांश्च ग्रामनगरं समुद्राख्या निशामय ॥४॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान्। लक्षयोजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान् ॥५॥
सप्तद्वीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलाकृते। उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमाशैलांश्च सप्त च ॥६॥
निबोध विप्र द्वीपाख्यां पुरा या विधिना कृता। जम्बूशाककुशप्लक्षक्रौञ्चन्यग्रोधपौष्करान् ॥७॥
मेरोरष्टसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः। अष्टानां लोकपालानां विहाराय मनोहराः॥८॥
मूलेऽनन्तस्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः। ऊर्ध्वे स्वर्गांश्च सप्तैव तेषामाख्यां निशामय ॥९॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं सुमनोहरम्। जनोलोकं तपोलोकं सत्यलोकं च शौनक ॥१०॥

अध्याय ७

ब्रह्मा द्वारा पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि का निर्माण

सौति बोले—पश्चात् ब्रह्मा ने तप करके मन अभिलषित सिद्धि प्राप्त की और सर्वप्रथम मधुकैटभ दैत्य के मेद (चर्बी) से मेदिनी (पृथिवी) का निर्माण किया ॥१॥ अनन्तर आठ प्रधान और मनोहर पर्वतों एवं उनसे असंख्य छोटे-छोटे पर्वतों की रचना की। उनके नाम क्या बताऊँ? प्रधानों की नामावली सुनिए ॥२॥ सुमेरु, कैलास, मलय, हिमालय, उदयाचल, अस्ताचल, सुवेल और गन्धमादन ये आठ प्रधान पर्वत हैं। फिर ब्रह्मा ने सात समुद्रों, अनेक नदों, कई नदियों, वृक्षों, ग्रामों और नगरों की सृष्टि की। लवण (खार), ईख, सुरा, घी, दही, दूध और (शुद्ध) जल के सात समुद्र हैं। उनमें से पहले की लम्बाई-चौड़ाई एक लक्ष योजन की है। बाद वाले उत्तरोत्तर दुगुने होते गये हैं ॥३-५॥ इन समुद्रों से घिरे हुए सात द्वीप हैं। उनके भूमण्डल कमलपत्र जैसे हैं। उनमें उपद्वीप और मर्यादापर्वत भी सात-सात ही हैं। हे विप्र! उन द्वीपों का नाम बता रहा हूँ, सुनिए—जम्बू, शाक कुश, प्लक्ष, क्रौञ्च, न्यग्रोध और पुष्कर यही द्वीपों के नाम हैं ॥६-७॥ अनन्तर ब्रह्मा ने आठों लोकपालों के विहार करने के लिए मेरु पर्वत के आठों शिखरों पर मनोहर आठ पुरियों का निर्माण किया ॥८॥ जगत्पति ने उसके मूल भाग (पाताल) में अनन्त (शेषनाग) की नगरी का निर्माण करके ऊपर सातों स्वर्गों की रचना की, जिन्हें बता रहा हूँ, सुनिए—॥९॥ शौनक! भूर्लोक, भुवर्लोक, अत्यन्त मनोहर स्वर्ग लोक, जनोलोक, तपोलोक और

शृङ्गमूर्ध्नि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम्। तदूर्ध्वे ध्रुवलोकं च सर्वतः सुमनोहरम् ॥११॥
तदधः सप्त पातालान्निर्ममे जगदीश्वरः। स्वर्गातिरिक्तभोगाढ्यानधोऽधः क्रमतो मुने ॥१२॥
अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम्। महातलं च पातालं रसातलमधस्ततः ॥१३॥
सप्तद्वीपैः सप्तनाकैः सप्तपातालसंज्ञकैः। एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकृतमेव च ॥१४॥
एवं चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च। महाविष्णोश्च लोम्नां च विवरेषु च शौनक ॥१५॥
प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सुरा[1] नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मायया ॥१६॥
ब्रह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः। न शंकरो न धर्मश्च न च विष्णुश्च के सुराः ॥१७॥
संख्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथाऽपि सः। विश्वाकाशदिशां चैव सर्वतो यद्यपि क्षमः ॥१८॥
कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च। अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नश्वराणि च ॥१९॥
वैकुण्ठः शिवलोकश्च गोलोकश्च तयोः परः। नित्यो विश्वबहिर्भूतश्चाऽऽत्माकाशदिशो यथा ॥२०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
सृष्टिनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

सत्य लोक का निर्माण करके ब्रह्मा ने मेरु के शिखर के शिरोभाग में जरा-मृत्यु से रहित ब्रह्मलोक की रचना की। उसके ऊपर चारों ओर अत्यन्त मनोहर ध्रुव लोक बनाया और नीचे जगदीश्वर ने सात पाताल लोकों की रचना की। मुने! वे स्वर्गलोक की अपेक्षा अधिक भोग-सामग्रियों से सम्पन्न हैं ॥१०-१२॥ (उनके नाम ये हैं—) अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल और रसातल ॥१३॥ सात द्वीप, सात स्वर्ग और सात पाताल लोकों से युक्त यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मा के अधिकार में है ॥१४॥ शौनक! इस प्रकार के असंख्य ब्रह्माण्ड, जो कृत्रिम हैं, भगवान् महाविष्णु के लोम-विवरों में स्थित हैं ॥१५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की माया द्वारा प्रत्येक विश्व में दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, देवगण और मनुष्य आदि स्थित हैं ॥१६॥ जगत्पति ब्रह्मा ब्रह्माण्ड की गणना करने में असमर्थ हैं। (इतना ही नहीं) शंकर, धर्म, विष्णु और देवगण भी (उसकी गणना करने में) असमर्थ हैं ॥१७॥ यद्यपि ईश्वर उसकी गणना करने में समर्थ हैं, तथापि विश्व, आकाश और दिशाओं का सर्वथा संख्यान तो उनके लिए भी कठिन है ॥१८॥ विप्रेन्द्र! कृत्रिम विश्व और उनके भीतर रहने वाली जो वस्तुएँ हैं, वे सब अनित्य और स्वप्न की भाँति नश्वर हैं। १९॥ वैकुण्ठ और शिवलोक तथा इन दोनों से परे जो गोलोक है—ये सब नित्य धाम हैं। आत्मा, आकाश और दिशा की भाँति ये सब कृत्रिम विश्व से बाहर तथा नित्य हैं ॥२०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में सृष्टिनिरूपण
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

---

१ क. ०राऽसुराद०।

अथाष्टमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोषिति। चकार वीर्याधानं च कामुक्यां कामुको यथा ॥१॥
सा दिव्यं शतवर्षं च धृत्वा गर्भं सुदुःसहम्। सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान्मनोहरान् ॥२॥
विविधाञ्शास्त्रसंघांश्च तर्कव्याकरणादिकान्। षट्त्रिंशत्संख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥३॥
षड् रागान्सुन्दरांश्चैव नानातालसमन्वितान्। सत्यत्रेताद्वापरांश्च कलिं च कलहप्रियम् ॥४॥
वर्षं मासमृतुं चैव तिथिं दण्डक्षणादिकम्। दिनं रात्रिं च वारांश्च संध्यामुषसमेव च ॥५॥
पुष्टिं च देवसेनां च मेधां च विजयां जयाम्। षट् कृत्तिकाश्च योगांश्च करणं च तपोधन ॥६॥
देवसेनां महाषष्ठीं कार्तिकेयप्रियां सतीम्। मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता ॥७॥
ब्राह्मं पाद्मं च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम्। नित्यं नैमित्तिकं चैव द्विपरार्धं च प्राकृतम् ॥८॥
चतुर्विधं च प्रलयं कालं वै मृत्युकन्यकाम्। सर्वान्व्याधिगणांश्चैव सा प्रसूय स्तनं ददौ ॥९॥
अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत। अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वाद्बभूवात्यन्तकामिनी[1] ॥१०॥

अध्याय ८

वेद, मनु आदि की सृष्टि का वर्णन

सौति बोले—ब्रह्मा ने विश्व की रचना करके परम सुन्दरी सावित्री में उसी तरह वीर्याधान किया जैसे कोई कामुक पुरुष कामुकी स्त्री में करता है। अनन्तर उस सावित्री ने उस वीर्य को दिव्य सौ वर्षों तक धारणकर चार मनोहर वेदों को प्रकट किया। साथ ही न्याय, व्याकरण आदि शास्त्र समूह और छत्तीस प्रकार की दिव्य एवं अत्यन्त मनोहर रागिनियों को उत्पन्न किया। फिर अनेक प्रकार के तालों से युक्त छह सुन्दर राग प्रकट किये। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलहप्रिय कलियुग को भी सावित्री ने उत्पन्न किया ॥१-४॥ तपोधन! वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण आदि, दिन, रात्रि, वार, सन्ध्या, उषाकाल, पुष्टि, देवसेना, मेधा, विजया, जया, छह कृत्तिका, योग और करण को भी उन्होंने उत्पन्न किया ॥५-६॥ कार्तिकेय की प्रिया सती महाषष्ठी देवसेना—जो मातृकाओं में प्रधान और बालकों की इष्टदेवी हैं, इन सब को भी सावित्री ने उत्पन्न किया ॥७॥ ब्राह्म, पाद्म, और वाराह ये तीन कल्प, नित्य, नैमित्तिक, द्विपरार्द्ध और प्राकृत ये चार प्रकार के प्रलय-काल, मृत्यु-कन्या और समस्त व्याधियों को उत्पन्न करके सावित्री ने उन्हें अपना स्तन पान कराया ॥८-९॥ अनन्तर ब्रह्मा के पृष्ठभाग से अधर्म और उनके वाम पार्श्व से अत्यन्त कामिनी अलक्ष्मी (दरिद्रा) उत्पन्न हुई ॥१०॥ उनके नाभिप्रदेश से शिल्पियों के गुरु विश्व-

---

१ क. ०भूव तस्य का०।

नाभिदेशाद्विश्वकर्मा जातो वै शिल्पिनां गुरुः। महान्तो वसवोऽष्टौ च महाबलपराक्रमाः ॥११॥
अथ धातुश्च मनस आविर्भूता कुमारकाः। चत्वारः पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥१२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ज्ञानिनां वरः ॥१३॥
आविर्बभूव मुखतः कुमारः कनकप्रभः। दिव्यरूपधरः श्रीमान्सस्त्रीकः सुन्दरो युवा ॥१४॥
क्षत्रियाणां बीजरूपो नाम्ना स्वायंभुवो मनुः। या स्त्री सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला ॥१५॥
सस्त्रीकश्च मनुस्तस्थौ धात्राज्ञापरिपालकः। स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहर्षितान् ॥१६॥
सृष्टिं कर्तुं महाभागो महाभागवतान्द्विजः। जग्मुस्ते च नहीत्युक्त्वा तप्तुं कृष्णपरायणाः ॥१७॥
चुकोप हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः। कोपासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥१८॥
आविर्भूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो। कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेषामेकः प्रकीर्तितः ॥१९॥
सर्वेषामेव विश्वानां स तामस इति स्मृतः। राजसश्च स्वयं ब्रह्मा शिवो विष्णुश्च सात्त्विकौ ॥२०॥
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रकृतेः परः। परमज्ञानिनो मूर्खा वदन्ति तामसं शिवम् ॥२१॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपं च निर्मलं वैष्णवाग्रणीम्। शृणु नामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि च ॥२२॥
महान्महात्मा मतिमान्भीषणश्च भयंकरः[1]। ऋतुध्वजश्चोर्ध्वकेशः पिङ्गलाक्षो रुचिः शुचिः ॥२३॥

कर्मा और महान् बल-पराक्रम से उत्पन्न महान् आठ वसु उत्पन्न हुए ॥११॥ पश्चात् ब्रह्मा के मन द्वारा चार कुमार उत्पन्न हुए, जो पाँच वर्ष की अवस्था वाले एवं ब्रह्मतेज से देदीप्यमान थे ॥१२॥ उनमें से प्रथम सनक, दूसरे सनन्दन, तीसरे सनातन और चौथे ज्ञानिश्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार हैं ॥१३॥ उनके मुख से एक कुमार उत्पन्न हुआ, जिसकी प्रभा सुवर्ण की भाँति थी। वह दिव्य रूप धारण किये, श्रीमान्, स्त्री समेत, सुन्दर, युवा और क्षत्रियों का बीज रूप था। उसका नाम स्वायम्भुव मनु था और उस स्त्री का नाम शतरूपा था, जो परम रूपवती तथा लक्ष्मी की कलास्वरूपा थी ॥१४-१५॥ स्त्री समेत मनु ने ब्रह्मा की आज्ञा को शिरोधार्य किया। अनन्तर ब्रह्मा ने स्वयं अत्यन्त हर्षित उन महाभागवत कुमारों से भी सृष्टि करने के लिए गृहस्थ होने को कहा। द्विज! किन्तु उन कुमारों ने महाभाग ब्रह्मा की आज्ञा का 'नहीं' कहकर उल्लंघन कर दिया और कृष्णपरायण वे कुमार तप करने के लिए चले गये ॥१६-१७॥ उस कारण जगत्पति ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हुए। प्रभो! ब्रह्मतेज से देदीप्यमान विधाता के कुपित होने पर उनके ललाट से एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। उनमें से एक को संहर्ता कालाग्निरुद्र कहा गया है। सम्पूर्ण लोकों में केवल वे ही, तामस या तमोगुणी, माने गये हैं। स्वयं ब्रह्मा 'राजस' तथा शिव और विष्णु 'सात्त्विक' कहे जाते हैं। गोलोकनाथ भगवान् कृष्ण निर्गुण और प्रकृति से परे हैं। परम अज्ञानी मूर्ख लोग शिवजी को तामस कहते हैं किन्तु वे शुद्ध सत्त्वस्वरूप, निर्मल, तथा वैष्णवों में अग्रणी हैं। अब रुद्रों के वेदोक्त नाम सुनो ॥१८-२२॥ महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयंकर, ऋतुध्वज, उर्ध्वकेश, पिंगलाक्ष, रुचि और शुचि यही उनके नाम हैं ॥२३॥ ब्रह्मा के दाहिने कान से पुलस्त्य, बायें से पुलह, दाहिने नेत्र से अत्रि, बाँयें नेत्र से स्वयंक्रतु

---

१ क. ०रः। ऊर्ध्वतेजोर्ध्वके०।

पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः। दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात्क्रतुः स्वयम् ॥२४॥
अरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः। भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्वतः ॥२५॥
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा। वक्षसश्चैव वोढुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः ॥२६॥
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा[1] गलात्। वसिष्ठो रसनादेशात्प्रचेता अधरोष्ठतः ॥२७॥
हंसश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम्। सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराऽऽज्ञां सुतान्प्रति।
पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य तवमुवाच स नारदः ॥२८॥

नारद उवाच

पूर्वमानय मज्ज्येष्ठान्सनकादीन्पितामह। कारयित्वा दारयुक्तानस्मान्वद जगत्पते ॥२९॥
पित्रा ते तपसे युक्ताः संसाराय वयं कथम्। अहो हन्त प्रभोर्बुद्धिर्विपरीताय कल्पते ॥३०॥
कस्मै पुत्राय पीयूषात्परं दत्तं तपोऽधुना। कस्मै ददासि विषयं विषमं च विषाधिकम् ॥३१॥
अतीव निम्ने घोरे च भवाब्धौ यः पतेत्पितः। निष्कृतिस्तस्य नास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च ॥३२॥
निस्तारबीजं सर्वेषां बीजं च पुरुषोत्तमम्। सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम् ॥३३॥
भक्तैकशरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥३४॥
भक्ताराध्यं भक्तसाध्यं विहाय परमेश्वरम्। मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे ॥३५॥

(यज्ञ), नासाछिद्र से अरणि और अंगिरा, मुख से रुचि, बाँये पार्श्व से भृगु और दाहिने पार्श्व से दक्ष उत्पन्न हुए ॥२४-२५॥ छाया से कर्दम, नाभि से पञ्चशिख, वक्षःस्थल से वोढु, कण्ठ देश से नारद, स्कन्ध प्रदेश से मरीचि, गले से अपान्तरतमा, जिह्वा से वशिष्ठ, अधरोष्ठ से प्रचेता, वाम कुक्षि से हंस, दक्षिण कुक्षि से यति प्रकट हुए। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना करने के लिए अपने पुत्रों को आज्ञा दी। (इस पर) पिता की बात सुनकर नारद ने उनसे कहा ॥२६-२८॥

नारद बोले—पितामह, जगत्पते! सर्वप्रथम आप हमारे ज्येष्ठ भाई सनकादिकों को यहाँ लाइये और उनका विवाह कीजिए। तत्पश्चात् हमें आज्ञा दीजिये ॥२९॥ जब पिता के ही द्वारा वे सब तप करने के लिए नियुक्त किये गये तो हमें संसार में क्यों फँसाया जा रहा है। आश्चर्य और खेद की बात है कि प्रभु की बुद्धि विपरीत भाव को प्राप्त हो रही है ॥३०॥ क्योंकि किसी पुत्र को तो अमृत से भी उत्तम तप इस समय प्रदान किया जा रहा है और किसी को विष से भी अधिक विषम होने वाला विषय प्रदान किया जा रहा है ॥३१॥ पिता जी! अत्यन्त निम्न कोटि के घोर भव-सागर में जो गिर जायगा उसकी कोटि कल्पों में भी कोई निष्कृति (उद्धार होने का उपाय) नहीं है ॥३२॥ क्योंकि सभी प्राणियों के निस्तार करने का कारण एकमात्र भगवान् पुरुषोत्तम ही हैं, जो समस्त वस्तुओं के दाता, भक्तिप्रद, दास्यप्रद, सत्य, कृपामय, भक्तों के एकमात्र शरणप्रद, भक्तवत्सल, स्वच्छ, भक्तों के प्रिय, भक्तनाथ, भक्त के ऊपर अनुग्रह करने वाले, भक्तों के आराध्य देव और भक्तसाध्य हैं। भला! ऐसे परमेश्वर को छोड़कर कौन मूढ़ जन अपने मन को विनाशजनक विषय में लगायेगा ॥३३-३५॥ कौन मूढ़ प्राणी अमृत से भी अधिक

---

१ क. तमो ग०।

विहाय कृष्णसेवां च पीयूषादधिकां प्रियाम्। को मूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम् ॥३६॥
स्वप्नवन्नश्वरं तुच्छमसत्यं मृत्युकारणम्। यथा दीपशिखाग्रं च कीटानां सुमनोहरम् ॥३७॥
यथा बडिशमांसं च मत्स्यापातसुखप्रदम्। तथा विषयिणां तात विषयो मृत्युकारणम् ॥३८॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम विधेः पुरः। तस्थौ तातं नमस्कृत्य ज्वलदग्निशिखोपमः ॥३९॥
ब्रह्मा कोपपरीतश्च शशाप तनयं द्विज। उवाच कम्पिताङ्गश्च रक्तास्यः स्फुरिताधरः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

भविता ज्ञानलोपस्ते मच्छापेन च नारद। क्रीडामृगश्च त्वं साध्यो योषिल्लुब्धश्च लम्पटः ॥४१॥
स्थिरयौवनयुक्तानां रूपाढ्यानां मनोहरः। पञ्चाशत्कामिनीनां च भर्ता च प्राणवल्लभः ॥४२॥
शृङ्गारशास्त्रवेत्ता च महाशृङ्गारलोलुपः। नानाप्रकारशृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरुः ॥४३॥
गन्धर्वाणां च सुवरः सुस्वरश्च सुगायनः। वीणावादनसंदर्भनिष्णातः स्थिरयौवनः ॥४४॥
प्राज्ञो मधुरवाक्शान्तः सुशीलः सुन्दरः सुधीः। भविष्यसि न संदेहो नामतश्चोपबर्हणः ॥४५॥
ताभिर्दिव्यं लक्षयुगं विहृत्य निर्जने वने। पुनर्मदीयशापेन दासीपुत्रश्च तत्परः ॥४६॥
वत्स वैष्णवसंसर्गाद्वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्। पुनः कृष्णप्रसादेन भविष्यसि ममाऽऽत्मजः ॥४७॥

मधुर भगवान् कृष्ण की सेवा को छोड़कर विषय नामक विषम विष का भक्षण करेगा ॥३६॥ जिस प्रकार दीपक की शिखा का अग्रभाग अत्यन्त मनोहर होते हुए भी पतिंगों के लिए मृत्युकारक है उसी प्रकार यह विषय भी स्वप्न की भाँति नश्वर, तुच्छ, असत्य और विनाशकारी है ॥३७॥ हे तात! जिस प्रकार बंसी में गुंथा हुआ मांस मछलियों को आपाततः सुखद जान पड़ता है, उसी प्रकार विषयी पुरुषों को विषय में सुख की प्रतीति होती है। किन्तु वास्तव में वह मृत्यु का कारण है ॥३८॥ प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति प्रदीप्त होने वाले नारद जी ब्रह्मा के सामने इस प्रकार कहकर चुप हो गये और उन्हें प्रणाम करके चुपचाप खड़े रहे ॥३९॥ द्विज! इस पर ब्रह्मा ने अत्यन्त कुपित होकर पुत्र नारद को शाप दे दिया। उस समय ब्रह्मा क्रोध से काँप रहे थे, उनका मुख लाल हो गया था और ओठ फड़क रहे थे ॥४०॥

ब्रह्मा बोले—नारद! मेरे शाप से तुम्हारा ज्ञान लुप्त हो जायगा। तुम कामिनियों के क्रीड़ामृग, स्त्री-लोभी और लम्पट बन जाओगे ॥४१॥ तुम स्थिर यौवन वाली अत्यन्त सुन्दरी पचास कामिनियों के प्राणप्रिय एवं सुन्दर पति बनोगे। तुम शृंगारशास्त्र के वेत्ता, महाशृंगारी, लोलुप, अनेक भाँति के शृंगारों में निपुण व्यक्तियों के गुरुओं के गुरु, गन्धर्वों में श्रेष्ठ, अच्छे स्वर वाले गायक तथा वीणा बजाने में सबसे निपुण होगे। तुम्हारा यौवन निरन्तर स्थिर रहेगा ॥४२-४४॥ उसी भाँति विद्वान्, मधुरभाषी, शान्त, सुशील, सुन्दर और सुबुद्धि होगे। इसमें सन्देह नहीं। उस समय उपबर्हण नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। उन कामिनियों के साथ निर्जन बन में एक लक्ष युग तक बिहार करने के अनन्तर मेरे शाप से दासीपुत्र होगे ॥४५-४६॥ वत्स! तदनन्तर वैष्णव महात्माओं के संसर्ग से और उनके उच्छिष्ट भोजन करने से तुम पुनः भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करके मेरे पुत्र रूप में प्रतिष्ठित होगे ॥४७॥ उस समय मैं तुम्हें पुरातन दिव्य ज्ञान प्रदान करूँगा। किन्तु इस समय मेरा पुत्र

ज्ञानं दास्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम्। अधुना भव नष्टस्त्वं मत्सुतो निपत ध्रुवम् ॥४८॥
ब्रह्मेत्युक्त्वा सुतं विप्र विरराम जगत्पतिः। रुरोद नारदस्तातमवोचत्संपुटाञ्जलिः ॥४९॥

नारद उवाच

क्रोधं संहर संहर्तस्तात तात जगद्गुरो। स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो क्रोधोऽयं मय्यनाकरः ॥५०॥
शपेत्परित्यजेद्विद्वान्पुत्रमुत्पथगामिनम्। तपस्विनं सुतं शप्तुं कथमर्हसि पण्डित ॥५१॥
जनिर्भवतु मे ब्रह्मन्यासु यासु च योनिषु। न जहातु हरेर्भक्तिर्मामेवं देहि मे वरम् ॥५२॥
पुत्रश्चेज्जगतां धातुर्नास्ति भक्तिर्हरेः पदे। सूकरादतिरिक्तश्च सोऽधमो भारते भुवि ॥५३॥
जातिस्मरो हरेर्भक्तियुक्तः सूकरयोनिषु। जनिर्लभेत्स प्रवरो गोलोकं याति कर्मणा ॥५४॥
गोविन्दचरणाम्भोजभक्तिमाध्वीकमीप्सितम्। पिबतां वैष्णवादीनां स्पर्शपूता वसुंधरा ॥५५॥
तीर्थानि स्पर्शमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह। पापानां पापितत्त्वानां क्षालनायाऽऽत्मनामपि ॥५६॥
मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुक्ताश्च भारते। परैश्च कोटिपुरुषैः पूर्वैः सार्धं हरेरहो ॥५७॥
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मन्त्रग्रहणमात्रतः। मुक्ताः शुध्यन्ति यत्पूर्वं कर्म निर्मूलयन्ति च ॥५८॥
पुत्रान्दारांश्च शिष्यांश्च सेवकान्बान्धवांस्तथा। यो दर्शयति सन्मार्गं सद्गतिस्तं लभेद्ध्रुवम् ॥५९॥
यो दर्शयत्यसन्मार्गं शिष्यैर्विश्वासितो गुरुः। कुम्भीपाके स्थितिस्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६०॥

होते हुए भी तुम नष्ट हो जाओ और अवश्य ही नीचे गिरो ॥४८॥ विप्र! जगत्पति ब्रह्मा इस प्रकार अपने पुत्र से कहकर चुप हो गये और नारद जी रुदन करते हुए हाथ जोड़कर अपने पिता से बोले ॥४९॥

नारद बोले—हे तात! हे जगद्गुरो! आप क्रोध को शान्त करें। आप स्रष्टा हैं। तपस्वियों के स्वामी हैं। अहो! मुझ पर आपका यह क्रोध अकारण ही हुआ है। ॥५०॥ हे पण्डित! विद्वान् पुरुष दुराचारी पुत्र को शाप देते हैं और उसका त्याग करते हैं। अतः आप अपने तपस्वी पुत्र को शाप देना कैसे उचित मानते हैं ॥५१॥ ब्रह्मन्! जिन-जिन योनियों में मेरा जन्म हो, भगवान् की भक्ति मुझे कदापि न छोड़े, यह वरदान भी मुझे देने की कृपा करें ॥५२॥ क्योंकि कोई जगत् के रचयिता का ही पुत्र क्यों न हो, यदि उसमें भगवच्चरण की भक्ति नहीं है तो वह भारत के भूमण्डल में सूकर से भी अधिक अधम है ॥५३॥ पूर्वजन्म के स्मरण और भगवान् की भक्ति से युक्त रहने पर यदि उसका जन्म सूकर योनि में भी हो जाये तो वह श्रेष्ठ पुरुष अपने कर्म से गोलोक को प्राप्त कर लेता है ॥५४॥ क्योंकि गोविन्द के चरणकमल की भक्तिरूप मनोवांछित मकरन्द का पान करने वाले वैष्णवों के स्पर्श से ही यह वसुन्धरा पृथ्वी पवित्र होती है ॥५५॥ पितामह! तीर्थ-समूह पापियों के पाप से अपने को शुद्ध करने के लिए वैष्णवों का स्पर्श चाहते हैं। भारत में भगवान् के मन्त्रोपदेश मात्र से मनुष्य करोड़ों पूर्वजों तथा वंशजों के साथ मुक्त हो जाते हैं ॥५६-५७॥ मन्त्र ग्रहण मात्र से मनुष्य करोड़ों जन्म के संचित पाप से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है क्योंकि वह (मंत्र) पूर्व के पापों को निर्मूल कर देता है ॥५८॥ इस प्रकार पुत्र, स्त्री, शिष्य, सेवक और बान्धवगणों को जो सन्मार्ग प्रदर्शित कराता है उसकी निश्चित सद्गति होती है ॥५९॥ और जो शिष्य का विश्वास पात्र गुरु (शिष्य को) असन्मार्ग बताता है, वह कुम्भीपाक नरक में तब तक पड़ा रहता है जब तक सूर्य

स किंगुरुः स किंतात स किंस्वामी स किंसुतः। यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः ॥६१॥
शप्तो निरपराधेन त्वयाऽहं चतुरानन। मया शप्तुं त्वमुचितो घ्नन्तं घ्नन्त्यपि पण्डिताः ॥६२॥
कवचस्तोत्रपूजाभिः सहितस्ते मनुर्मनोः। लुप्तो भवतु मच्छापात्प्रतिविश्वेषु निश्चितम् ॥६३॥
अपूज्यो भव विश्वेषु यावत्कल्पत्रयं पितः। गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्य पूज्यो भविष्यसि ॥६४॥
अधुना यज्ञभागस्ते व्रतादिष्वपि सुव्रत। पूजनं चास्तु नामैकं वन्द्यो भव सुरादिभिः ॥६५॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम पितुः पुरः। तस्थौ सभायां स विधिर्हृदयेन विदूयता ॥६६॥
उपबर्हणगन्धर्वो नारदस्तेन हेतुना। दासीपुत्रश्च शापेन पितुरेव च शौनक ॥६७॥
ततः पुनर्नारदश्च स बभूव महानृषिः। ज्ञानं प्राप्य पितुः पश्चात्कथयिष्यामि चाधुना ॥६८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारद-
शापोपलम्भनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश च सृष्टये। सृष्टिं प्रचक्रुस्ते सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना ॥१॥

और चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है ॥६०॥ वे गुरु, भाई, पिता, स्वामी और पुत्र निन्दनीय हैं जो भगवान् श्री कृष्ण के चरण कमल की भक्ति प्रदान करने में असमर्थ हैं ॥६१॥ चतुरानन ! तुमने मुझे बिना अपराध के ही शाप दिया है, अतः उचित है कि मैं भी तुम्हें शाप दूं; क्योंकि मारने वाले को पण्डितगण भी मारते हैं ॥६२॥ मेरे शाप से प्रत्येक विश्व में तुम्हारे कवच, स्तोत्र, पूजा और मन्त्र लुप्त रहेंगे ॥६३॥ और हे पिता ! तुम सभी विश्वों में तीनों कल्पों तक अपूजनीय रहोगे (अर्थात् तुम्हारी पूजा कोई नहीं करेगा)। हाँ, तीनों कल्पों के व्यतीत होने पर तुम पूज्य के भी पूज्य हो जाओगे ॥६४॥ हे सुव्रत ! इस समय तुम्हारा यज्ञभाग बंद हो और व्रतदिकों में भी तुम्हारा पूजन न हो केवल तुम देवों के वन्दनीय बने रहोगे ॥६५॥ ऐसा कह कर नारद जी अपने पिता के सामने चुप हो गए और ब्रह्मा भी सन्तप्त हृदय से उस सभा में सुस्थिर भाव से बैठे रहे ॥६६॥ शौनक ! पिता के शाप से ही नारद उपबर्हण नामक गन्धर्व हुए और पुनः दासी-पुत्र हुए। इसके पश्चात् पिता (ब्रह्मा) से ज्ञान प्राप्त करके वे महर्षि नारद हुए। इसका वर्णन मैं अभी करूँगा ॥६७-६८॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्म-नारद-शाप-प्राप्ति नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ९

दक्ष कन्याओं की संतति आदि का वर्णन

सौति बोले—हे विप्रेन्द्र ! इसके उपरान्त ब्रह्मा ने अपने पुत्रों को सृष्टि करने की आज्ञा प्रदान की और

मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः। अत्रेर्नेत्रमलाच्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह ॥२॥
प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह। पुलस्त्यमनसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च ॥३॥
मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे। आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः ॥४॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ। उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥५॥
आकूतिं रुचये प्रादाद्दक्षायाथ प्रसूतिकाम्। देवहूतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम् ॥६॥
प्रसूत्यां दक्षबीजेन षष्टिकन्याः प्रजज्ञिरे। अष्टौ धर्माय स ददौ रुद्रायैकादश स्मृताः ॥७॥
शिवायैकां सतीं प्रादात्कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान् ॥८॥
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्र निशामय। शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिः क्षमा श्रद्धा मतिः स्मृतिः ॥९॥
शान्तेः पुत्रश्च संतोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत्। धृतेर्धैर्यं च तुष्टेश्च हर्षदर्पौ सुतौ स्मृतौ ॥१०॥
क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिक। मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतेर्जातिस्मरो महान् ॥११॥
पूर्वपत्न्यां च मूर्त्यां च नरनारायणावृषी। बभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक ॥१२॥
नामानि रुद्रपत्नीनां सावधानं निबोध मे। कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया ॥१३॥
कन्दली भीषणा रास्ना प्रमोचा भूषणा शुकी। एतासां बहवः पुत्रा बभूवुः शिवपार्षदाः ॥१४॥
सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तत्याज्य यज्ञतः। पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे सा शंकरं पतिम् ॥१५॥
कश्यपस्य प्रियाणां च नामानि शृणु धार्मिक। अदितिर्देवमाता वै दैत्यमाता दितिस्तथा ॥१६॥

नारद को छोड़कर सभी पुत्रों ने सृष्टि करना आरम्भ भी किया ॥१॥ मरीचि के मन से कश्यप प्रजापति प्रकट हुए। अत्रि महर्षि के नेत्र के मल से क्षीरसागर में चन्द्रमा का आविर्भाव हुआ ॥२॥ प्रचेता के मन से गौतम और पुलस्त्य के मन से मैत्रावरुण उत्पन्न हुए ॥३॥ मनु-शतरूपा से आकूति, देवहूति और प्रसूति नामक तीन कन्यायें तथा प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तानपाद के पुत्र परम धार्मिक ध्रुव हुए ॥४-५॥ आकूति रुचि को, प्रसूति दक्ष को तथा देवहूति कर्दम प्रजापति को प्रदान की गई। देवहूति से स्वयं कपिल उत्पन्न हुए ॥६॥ दक्ष के वीर्य और प्रसूति के गर्भ से साठ कन्याओं की उत्पत्ति हुई, जिनमें से उन्होंने आठ कन्यायें धर्म को, ग्यारह रुद्र को, एक सती शिव को, तेरह कश्यप को तथा सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को प्रदान कीं ॥७-८॥ विप्र! धर्म की पत्नियों के नाम मैं कह रहा हूँ, सुनो—शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, क्षमा, श्रद्धा, मति और स्मृति उनके नाम हैं ॥९॥ शान्ति का पुत्र सन्तोष और पुष्टि का महान् हुआ। धृति के धैर्य और तुष्टि के हर्ष तथा दर्प नामक पुत्र हुए ॥१०॥ इसी प्रकार क्षमा के सहिष्णु, श्रद्धा के धार्मिक, मति के ज्ञान और स्मृति के महान् जातिस्मर नामक पुत्र हुआ ॥११॥ शौनक! धर्म की पहली पत्नी मूर्ति में नर-नारायण नामक दो ऋषि और अन्य भी धार्मिक पुत्र हुए ॥१२॥ अब मैं रुद्र की पत्नियों के नाम बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! कला, कलावती, काष्ठा, कालिका, कलहप्रिया, कन्दली, भीषणा, रास्ना, प्रमोचा, भूषणा और शुकी —ये उनके नाम हैं। उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो शिव के पार्षद हैं ॥१४॥ सती ने (अपने पिता के) यज्ञ में स्वामी (शंकर) की निन्दा होने के कारण अपना शरीर छोड़ दिया और पुनः हिमालय के यहाँ उत्पन्न होकर शंकर को पति के रूप में वरण किया ॥१५॥ धार्मिक! अब कश्यप की पत्नियों के नाम सुनो! देवमाता अदिति, दैत्यमाता दिति, सर्पों की माता कद्रू, पक्षियों

सर्पमाता तथा कद्रूर्विनता पक्षिसूस्तथा। सुरभिश्च गवां माता महिषाणां च निश्चित्तम् ॥१७॥
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम्। दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादिकाः ॥१८॥
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने। कथिताश्चादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ॥१९॥
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मञ्शच्यामजायत। आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मणः ॥२०॥
शनैश्चरयमौ पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा। उपेन्द्रवीर्यात्पृथ्व्यां तु मङ्गलः समजायत ॥२१॥

शौनक उवाच

कथं सौते स चोपेन्द्रान्मङ्गलः समजायत। वसुंधरायां बलवान्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२२॥

सौतिरुवाच

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्ता च वसुंधरा। विधाय सुन्दरीवेषमक्षता प्रौढयौवना ॥२३॥
मलये निर्जने रम्ये चारुचन्दनपल्लवे। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२४॥
तं सुशीलं शयानं च शान्तं सस्मितमीप्सितम्। सस्मिता तस्य तल्पे च सहसा समुपस्थिता ॥२५॥
सुरम्यां मालतीमालां ददौ तस्मै वरानना। सुगन्धि चन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥२६॥
उपेन्द्रस्तन्मनो ज्ञात्वा कामिनीं कामपीडिताम्। नानाप्रकारशृङ्गारं चकार च तया सह ॥२७॥
तदङ्गसङ्गसंसक्ता मूर्छां प्राप सती तदा। मृतेव निद्रितेवासौ बीजाधाने कृते हरौ ॥२८॥

की माता विनता, गौओं और महिषों की माता सुरभि, कुत्ते आदि चार पैर वाले जन्तु की माता सरमा, दानवों की माता दनु और अन्य पत्नियाँ भी इसी प्रकार अन्यान्य सन्तानों की जननी थीं ॥१६-१८॥ मुने ! इन्द्र द्वादश आदित्य और उपेन्द्र (विष्णु) आदि देवगण अदिति के पुत्र कहे गये हैं, जो महापराक्रमी एवं महाबली हैं ॥१९॥ ब्रह्मन् ! इन्द्र-पत्नी शची से जयन्त उत्पन्न हुआ। विश्वकर्मा की पुत्री सवर्णा में सूर्य द्वारा शनि, यम ये दो पुत्र और (यमुना) नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। उसी भाँति उपेन्द्र के वीर्य से पृथ्वी में मंगल नामक (ग्रह) उत्पन्न हुआ ॥२०-२१॥

शौनक बोले—सूतपुत्र ! उपेन्द्र के वीर्य से वसुँधरा में बलवान् मंगल कैसे उत्पन्न हुआ ? हमें बताने की कृपा करें ! ॥२२॥

सौति बोले—एक बार उपेन्द्र के रूप को देख कर पृथ्वी अत्यन्त काम-पीड़ित हुई। उसने अक्षुण्ण प्रौढ़ यौवन वाली एक सुन्दरी स्त्री का वेष बना कर मलयाचल के निर्जन स्थान में, जो रमणीक एवं चन्दन के सुन्दर पल्लवों से विभूषित था, सम्पूर्ण शरीर में चन्दन का लेप लगाए हुए, रत्नों के आभूषणों से विभूषित, सुशील, शान्त और मन्द मुसकान से युक्त अपने हृदयवल्लभ (उपेन्द्र) को सोते हुए देख कर स्वयं भी मुसकराती हुई पृथ्वी सहसा उनकी शय्या पर पहुँच गयी। उस सुन्दरी ने उन्हें अत्यन्त रमणीक एक मालती-माला तथा कस्तूरी और केसर से युक्त सुगन्धित चन्दन प्रदान किया ॥२३-२६॥ उपेन्द्र ने काम-पीड़ित उस कामिनी के मनोभाव को समझ कर उसके साथ नाना प्रकार की कामक्रीड़ायें कीं ॥२७॥ उनके अंगों में अपने अंग मिलाने से ही वह सती मूर्च्छित-सी होने लगी और उपेन्द्र (विष्णु) के वीर्याधान करने पर तो वह निद्रित अथवा मृतक की भाँति हो गयी ॥२८॥ अनन्तर विशाल

तां विलग्नां च सुश्रोणीं सुखसंभोगमूर्छिताम्। बृहन्मुक्तनितम्बां च सस्मितां विपुलस्तनीम् ॥२९॥
क्षणं वक्षसि कृत्वा तां तदोष्ठं च चुचुम्ब ह। विहाय तत्र रहसि जगाम पुरुषोत्तमः ॥३०॥
उर्वशी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने। सा च पप्रच्छ वृत्तान्तं कथयामास भूश्च ताम् ॥३१॥
वीर्यसंवरणं कर्तु सा चाशक्ता च दुर्बला। प्रवालस्याऽऽकरे त्रस्ता वीर्यन्यासं चकार सा ॥३२॥
तेन प्रवालवर्णश्च कुमारः समपद्य। तेजसा सूर्यसदृशो नारायणसुतो महान् ॥३३॥
मङ्गलस्य प्रिया मेधा तस्य[1] घण्टेश्वरो महान्। व्रणदाताऽतितेजस्वी विष्णुतुल्यो बभूव ह ॥३४॥
दितेर्हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षौ महाबलौ। कन्या च सिंहिका विप्र सैंहिकेयश्च तत्सुतः ॥३५॥
निर्ऋतिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः। सूकरेण हिरण्याक्षोऽप्यनपत्यो मृतो युवा ॥३६॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो वैष्णवाग्रणीः। विरोचनश्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रश्च बलिः स्वयम् ॥३७॥
बलेः पुत्रो महायोगी ज्ञानी शंकरकिंकरः। दितेर्वंशश्च कथितः कद्रूवंशं निबोध मे ॥३८॥
अनन्तं वासुकिं चैव कालीयं च धनंजयम्। कर्कोटकं तक्षकं च पद्ममैरावतं तथा ॥३९॥
महापद्मं च शङ्कुं च शङ्खं च संवरणं तथा। धृतराष्ट्रं च दुर्धर्षं दुर्जयं दुर्मुखं बलम् ॥४०॥
मोक्षं गोकामुकं चैव विरूपादींश्च शौनक[2]। एतेषां प्रवरांश्चैव यावत्यः सर्पजातयः ॥४१॥

नितम्बों एवं स्तनों वाली धरा को, जो संभोग-सुख से मूर्च्छित होने के उपरान्त मुसकरा रही थी, उपेन्द्र ने अपनी छाती से लगा कर उसका अधर-पान किया। पश्चात् वहीं एकान्त में उसे छोड़कर पुरुषोत्तम चले गये ॥२९-३०॥ मुने! उसी मार्ग से उर्वशी जा रही थी। उसने उसे सचेत किया और वृत्तान्त पूछा। पृथ्वी ने उससे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥३१॥ पश्चात् उस दुर्बला पृथ्वी उस वीर्य को धारण करने में असमर्थ हो गयी। तब उसने भयभीत प्रवालों (मूंगों) की खान में उस वीर्य को रख दिया। उससे प्रवाल के रंग का कुमार (मंगल) उत्पन्न हुआ। वह नारायण का पुत्र महान् और सूर्य के समान तेजस्वी हुआ ॥३३॥ मंगल की प्रिया का नाम मेधा था, जिसके पुत्र महान् घंटेश्वर तथा विष्णु के समान अति तेजस्वी व्रणदाता हुए ॥३४॥ विप्र! दिति के महाबली हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र एवं सिंहिका नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। सिंहिका के सैंहिकेय (राहु) नामक पुत्र हुआ ॥३५॥ सिंहिका का नाम निर्ऋति भी था। इसीलिए राहु को नैर्ऋत कहा गया है। हिरण्याक्ष को कोई संतान नहीं थी। वह युवावस्था में ही वराहावतार के द्वारा मारा गया ॥३६॥ हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ था। विरोचन उनके पुत्र हुए और विरोचन का पुत्र स्वयं बलि हुआ ॥३७॥ बलि का पुत्र (बाणासुर) हुआ, जो महायोगी, ज्ञानी और शंकर का बहुत बड़ा सेवक था। इस प्रकार दिति के वंश का वर्णन मैंने कर दिया और कद्रू के वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ॥३८॥ अनन्त, वासुकि, कालीय, धनञ्जय, कर्कोटक, तक्षक, पद्म, ऐरावत, महापद्म, शंकु शंख, संवरण, धृतराष्ट्र, दुर्द्धर्ष, दुर्जय, दुर्मुख, बल, गोक्ष, गोकार्मुक और विरूप आदि नाम हैं। शौनक! जितनी सर्पजातियाँ हैं, उन सब में प्रधान ये ही हैं ॥३९-४१॥ लक्ष्मी के अंश से

---

१ क. तस्यां खड्गेश्व०। २ ख. ०क। न ते०।

कन्यका मनसा देवी कमलांशसमुद्भवा। तपस्विनीनां प्रवरा महातेजस्विनी शुभा ॥४२॥
यत्पतिश्च जरत्कारुर्नारायणबलोद्भवः[1]। आस्तीकस्तनयो यस्या विष्णुतुल्यश्च तेजसा ॥४३॥
एतेषां नाममात्रेण नास्ति नागभयं नृणाम्। कद्रूवंशो निगदितो विनतायाः शृणुष्व मे ॥४४॥
वैनतेयारुणौ पुत्रौ विष्णुतुल्यपराक्रमौ। तौ बभूवुः क्रमेणैव यावत्यः पक्षिजातयः ॥४५॥
गावश्च महिषाश्चैव सुरभिप्रवरा इमे। सर्वे वै सारमेयाश्च बभूवुः सरमासुताः ॥४६॥
दानवाश्च दनोर्वंश्या अन्याः सामान्यजातयः। उक्तः कश्यपवंशश्च चन्द्राख्यानं निबोध मे ॥४७॥
नामानि चन्द्रपत्नीनां सावधानं निशामय। अत्यपूर्वं च चरितं पुराणेषु पुरातनम् ॥४८॥
अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा। मृगशीर्षा तथाऽऽर्द्रा च पूज्या साध्वी पुनर्वसुः ॥४९॥
पुष्याऽऽश्लेषा मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी। हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका ॥५०॥
ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढा चैवोत्तरा स्मृता। श्रवणा च धनिष्ठा च तथा शतभिषक्छुभा ॥५१॥
[2]पूर्वा भाद्रोत्तरा भाद्रा रेवत्यन्ता विधुप्रियाः। तासां मध्ये च सुभगा रोहिणी रसिका वरा ॥५२॥
संततं रसभावेन चकार शशिनं वशम्। रोहिण्युपगतश्चन्द्रो न यात्यन्यां च कामिनीम् ॥५३॥
सर्वा भगिन्यः पितरं कथयामासुरादृताः। सपत्नीकृतसंतापं प्राणनाशकरं परम् ॥५४॥

उत्पन्न होने वाली कन्या का नाम 'मनसा देवी' है, जो तपस्विनियों में अतिश्रेष्ठ, महातेजस्विनी और शुभमूर्ति है ॥४२॥ नारायण की कला से उत्पन्न जरत्कारु मुनि उसके पति हैं, और उसके पुत्र का नाम आस्तीक है, जो विष्णु के समान तेजस्वी है ॥४३॥ इन सब के नाममात्र (उच्चारण करने) से मनुष्यों को नाग-भय नहीं होता है। कद्रू के वंश का परिचय दे दिया, अब वनिता का वंश-वर्णन सुनिए ॥४४॥ वनिता के दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड़। दोनों ही विष्णु के समान पराक्रमी थे। उन्हीं से सभी पक्षि-जातियों का प्रादुर्भाव हुआ है ॥४५॥ गौ और महिष (भैंसे) सुरभी से उत्पन्न हुए। एवं सभी सारमय (कुत्ते) सरमा के पुत्र हैं। दनु के वंश में दानव हुए और अन्य स्त्रियों के वंशज अन्यान्य जातियाँ। इस प्रकार कश्यप वंश का वर्णन कर के अब चन्द्र वंश का आख्यान कर रहा हूँ, सुनो ! ॥४६॥-४७॥ सर्वप्रथम चन्द्रमा की पत्नियों के नाम और पुराणों में वर्णित उनका अपूर्व पुरातन चरित्र भी सावधान होकर सुनो ॥४८॥ अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पूज्या साध्वी पुनर्वसु, पुष्या, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्टा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शुभा शतभिषा, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा और रेवती—ये सत्ताईस चन्द्र की प्रेयसी पत्नियाँ हैं। किन्तु इनके मध्य सुन्दरी और रसिकशिरोमणि रोहिणी चन्द्रमा को अति प्रिय है; क्योंकि उसने अपने अनुराग-रस से चन्द्रमा को निरन्तर अपने वश में कर लिया। तब चन्द्रमा ने अन्य पत्नियों की बड़ी अवहेलना की ॥४९-५३॥ अनन्तर सभी बहिनों ने आपस में मिल कर अपने पिता से अपना वह दुःख प्रकट किया, जो सपत्नी (सौत) के द्वारा उत्पन्न किया गया था और अत्यन्त प्राणनाशक था ॥५४॥ (पिता) दक्ष ने क्रुद्ध होकर चन्द्रमा

---

१ ख. ०णकुलो.। २ क. पूर्वोत्तराभाद्रपदा रे०।

दक्षः प्रकुपितश्चन्द्रमशपन्मन्त्रपूर्वकम्। द्रुतं श्वशुरशापेन यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः॥५५॥
दिने दिने यक्ष्मणा स क्षीयमाणश्च दुःखितः। वपुष्यर्धं क्षीयमाणे शंकरं शरणं ययौ॥५६॥
दृष्ट्वा चन्द्रं शंकरश्च क्लेशितं शरणागतम्। करुणासागरस्तस्मै कृपया चाभयं ददौ॥५७॥
निर्मुक्तं यक्ष्मणा कृत्वा स्वकपाले स्थलं ददौ। अमरो निर्भयो भूत्वा स तस्थौ शिवशेखरे॥५८॥
तं शिवः शेखरे कृत्वा चाभवच्चन्द्रशेखरः। नास्ति लोकेषु देवेषु शिवाच्छरणपञ्जरः॥५९॥
दक्षकन्याः पतिं मुक्तं दृष्ट्वा च रुरुदुः पुनः। आजग्मुः शरणं तातं दक्षं तेजस्विनां वरम्॥६०॥
उच्चैश्च रुरुदुर्गत्वा निहत्याङ्गं पुनः पुनः। तमूचुः कातरं दीना दीनानाथं विधेः सुतम्॥६१॥

दक्षकन्या ऊचुः

स्वामिसौभाग्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्माभिरेव च। सौभाग्यमस्तु नस्तात गतः स्वामी गुणान्वितः॥६२॥
स्थिते चक्षुषि हे तात दृष्टं ध्वान्तमयं जगत्। विज्ञातमधुना स्त्रीणां पतिरेव हि लोचनम्॥६३॥
पतिरेव गतिः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च संपदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवे॥६४॥
पतिर्नारायणः स्त्रीणां व्रतं धर्मः सनातनः। सर्वं कर्म वृथा तासां स्वामिनो विमुखाश्च याः॥६५॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा। सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि नियमाश्च ये॥६६॥
देवार्चनं चानशनं सर्वाणि च तपांसि च। स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥६७॥

को मन्त्रपूर्वक शाप दे दिया। श्वशुर के शाप देने से चन्द्रमा अत्यन्त शीघ्र यक्ष्मा रोग से पीड़ित हो गए॥५५॥ दिन-प्रतिदिन यक्ष्मा रोग से दुःखी और क्षीण काय होते हुए चन्द्रमा ने आधे शरीर के क्षीण हो जाने पर शंकर की शरण प्राप्त की॥५६॥ करुणासागर शंकर ने शरण में आये हुए चन्द्रमा को दुःखी देख कर कृपा कर उन्हें अभयदान दिया॥५७॥ और यक्ष्मा रोग से मुक्त करके उन्हें अपने मस्तक पर स्थान दिया। जिससे चन्द्रमा भी अमर और निर्भय होकर शिव के शिखर पर विराजमान हो गए॥५८॥ तब से शंकर भी उन्हें अपने शिखर पर रख लेने के कारण चन्द्रशेखर कहलाने लगे। देवों तथा अन्य लोगों में शिव से बढ़ कर शरणागत-पालक दूसरा कोई नहीं है॥५९॥ पश्चात् दक्ष की कन्याएँ अपने पति (चन्द्रमा) को रोग-मुक्त देखकर पुनः रोने लगीं और तेजस्वियों में श्रेष्ठ पिता दक्ष की शरण पहुँचीं। वहाँ जाकर बार-बार अपने (शिर आदि) अंगों को पीटती हुई वे उच्च स्वर से रोने लगीं और दीन होकर कातर भाव से दीनानाथ ब्रह्मपुत्र दक्ष से कहने लगीं॥६०-६१॥

दक्ष-कन्याओं ने कहा—तात! हम लोगों ने स्वामी की प्राप्ति रूप सौभाग्य पाने के लिए आपसे निवेदन किया था। किन्तु सौभाग्य तो दूर रहा हमारे गुणवान् स्वामी ही हमें छोड़कर चले गए॥६२॥ तात! नेत्रों के रहते हुए भी हमें सारा जगत् अन्धकारपूर्ण दिखायी पड़ रहा है। इस समय यह बात भलीभाँति समझ में आ रही है कि पति ही स्त्रियों का नेत्र है॥६३॥ (इतना ही नहीं) प्रत्युत स्त्रियों की गति, प्राण और सम्पत्ति भी पति ही है। उनके धर्म अर्थ काम और मोक्ष का हेतु तथा भवसागर को पार करने का सेतु पति ही है॥६४॥ पति ही स्त्रियों के नारायण, व्रत और सनातनधर्म है। इसलिए पति से विमुख रहने वाली स्त्रियों के सभी धर्म-कर्म व्यर्थ हैं॥६५॥ सभी तीर्थों के स्नान, समस्त यज्ञों की दक्षिणा, सब भाँति के दान, पुण्य, व्रत, नियम, देव-पूजा, व्रतोपवास, सभी तप पति की चरण-सेवा की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है॥६६-६७॥ समस्त बन्धुओं और स्त्रियों का प्रिय

सर्वेषां बान्धवानां च प्रियः पुत्रश्च योषिताम्। स एव स्वामिनोंऽशश्च शतपुत्रात्परः पतिः॥६८॥
असद्वंशप्रसूता या सा द्वेष्टि स्वामिनं सदा। यस्या मनश्चलं दुष्टं सततं परपूरुषे॥६९॥
पतितं रोगिणं दुष्टं निर्धनं गुणहीनकम्। युवानं चैव वृद्धं वा भजेत्तं न त्यजेत्सती॥७०॥
सगुणं निर्गुणं वाऽपि द्वेष्टि या संत्यजेत्पतिम्। पच्यते कालसूत्रे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥७१॥
कीटैः शुनकतुल्यैश्च भक्षिता सा दिवानिशम्। [1]भुङ्क्ते मृतवसामांसे पिबेन्मूत्रं च तृष्णया॥७२॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः। श्वापदः शतजन्मानि सा भवेद्बन्धुहा ततः॥७३॥
ततो मानवजन्मानि लभेच्चेत्पूर्वकर्मणः। विधवा धनहीना च रोगयुक्ता भवेद्ध्रुवम्॥७४॥
देहि नः कान्तदानं च कामपूरं विधेः सुत। विधात्रा सदृशस्त्वं च पुनः स्रष्टुं क्षमो जगत्॥७५॥
कन्यानां वचनं श्रुत्वा दक्षः शंकरसंनिधिम्। जगाम शंभुस्तं दृष्ट्वा समुत्थाय ननाम च॥७६॥
दक्षस्तस्याऽऽशिषं कृत्वा समुवाच कृपानिधिम्। तत्याज कोपं दुर्धर्षं[2] दृष्ट्वा च प्रणतं शिवम्॥७७॥

दक्ष उवाच

देहि जामातरं शंभो मदीयं प्राणवल्लभम्। मत्सुतानां च प्राणानां परमेव प्रियं पतिम्॥७८॥
न चेद्ददासि जामातर्मम जामातरं विधुम्। दास्यामि दारुणं शापं तुभ्यं त्वं केन मुच्यसे॥७९॥
दक्षस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः। सुधाधिकं च वचनं ब्रह्मञ्शरणपञ्जरः॥८०॥

पुत्र होता है किन्तु वह पुत्र स्वामी का अंश मात्र रहता है। इसलिए (स्त्रियों के लिए) पति सैकड़ों पुत्रों से भी बढ़ कर है॥६८॥ असत्कुल में उत्पन्न होने वाली स्त्री अपने पति से सदा वैरभाव ही रखती है क्योंकि उसका मन सदैव चलायमान, दुष्ट और पर पुरुष में लगा रहता है॥६९॥ किन्तु सती स्त्रियाँ पतित, रोगी, दुष्ट, निर्धन, गुणहीन, युवा या वृद्ध कैसा भी पति क्यों न हो उसकी भी सेवा करती हैं॥७०॥ जो स्त्री गुणी अथवा निर्गुण पति से द्वेष या उनका त्याग करती हैं वे कालसूत्र में तब तक पकायी जाती हैं जब तक सूर्य-चन्द्रमा की सत्ता रहती है॥७१॥ वहाँ कुत्ते के समान कीड़े उसे दिनरात खाया करते हैं। क्षुधा लगने पर वह स्त्री मृतक का मांस खाती है और प्यास लगने पर मूत्र पान करती है॥७२॥ अनन्तर करोड़ जन्मों तक गीध, सौ जन्मों तक सूकरी, सौ जन्मों तक हिंसक जीव होकर अन्त में बन्धु का नाश करती है॥७३॥ पुनः पूर्व कर्मों के अनुसार यदि मानव-जन्म प्राप्त किया तो विधवा, दरिद्रा, और रोगिणी होती है, यह निश्चित है॥७४॥ अतः हे ब्रह्मपुत्र! हमें पति-दान देने की कृपा करें! क्योंकि आप ब्रह्मा के समान ही समस्त जगत् की सृष्टि करने मे समर्थ हैं॥७५॥ कन्याओं की ऐसी बातें सुनकर दक्ष शंकर के पास गए और शिव ने उन्हें देखते ही उठ कर प्रणाम किया॥७६॥ कृपानिधान शंकर को दक्ष ने आशीर्वाद प्रदान किया और (साथ ही) शिव को प्रणत देख कर अपना क्रोध भी त्याग दिया॥७७॥

दक्ष बोले—शम्भो! आप मेरे प्राणप्रिय जामाता को लौटा दें, जो मेरी कन्याओं के परम प्राणप्रिय पति हैं॥७८॥ आप भी मेरे जामाता हैं। तथापि यदि मेरे जामाता चन्द्रमा को नहीं लौटाते हैं तो मैं आपको दारुण शाप दे दूंगा, फिर तो उससे मुक्त नहीं हो सकेंगे॥७९॥ ब्रह्मन्! दक्ष की बातें सुनकर कृपानिधि एवं शरणागत

१ क. ०ङ्क्ते मूत्ररसं मां०। २ ख. धर्षो दृ०।

शिव उवाच

करोषि भस्मसाच्चेन्मां दत्त्वा वा शापमेव च। नाहं दातुं समर्थश्च चन्द्रं च शरणागतम् ॥८१॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा दक्षस्तं शप्तुमुद्यतः। शिवः सस्मार गोविन्दं विपन्मोक्षणकारकम् ॥८२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो वृद्धब्राह्मणरूपधृक्। समाययौ तयोर्मूलं तौ तं च नमतुः क्रमात् ॥८३॥
दत्त्वा शुभाशिषं तौ स ब्रह्मज्योतिः सनातनः। उवाच शंकरं पूर्वं परिपूर्णतमो द्विज ॥८४॥

श्रीभगवानुवाच

न चाऽऽत्मनः प्रियः कश्चिच्छर्व सर्वेषु बन्धुषु। आत्मानं रक्ष दक्षाय देहि चन्द्रं सुरेश्वर ॥८५॥
तपस्विनां वरः शान्तस्त्वमेवं वैष्णवाग्रणीः। समः सर्वेषु जीवेषु हिंसाक्रोधविवर्जितः ॥८६॥
दक्षः क्रोधी च दुर्धर्षस्तेजस्वी ब्रह्मणःसुतः। शिष्टो बिभेति दुर्धर्षं न दुर्धर्षश्च कञ्चन ॥८७॥
नारायणवचः श्रुत्वा हसित्वा शंकरः स्वयम्। उवाच नीतिसारं च नीतिबीजं परात्परम् ॥८८॥

शंकर उवाच

तपो दास्यामि तेजश्च[1] सर्वसिद्धिं च संपदम्। प्राणांश्च न समर्थोऽहं प्रदातुं शरणागतम् ॥८९॥
यो ददाति भयेनैव प्रपन्नं शरणागतम्। तं च धर्मः परित्यज्य याति शप्त्वा सुदारुणम् ॥९०॥
सर्वं त्यक्तुं समर्थोऽहं न स्वधर्मं जगत्प्रभो। यः स्वधर्मविहीनश्च स च सर्वबहिष्कृतः ॥९१॥

पालक शिव से अमृत से भी बढ़कर (मधुर) वचन उनसे कहा—

शिव बोले—मुझे भस्म कीजिए या शाप प्रदान कीजिए, किन्तु शरणागत चन्द्रमा को मैं देने में असमर्थ हूँ। शिव की बात सुनकर दक्ष उन्हें शाप देने को तैयार हो गये। उस समय शिव विपत्ति से मुक्त कराने वाले गोविन्द का स्मरण करने लगे ॥८१-८२॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर वहाँ आ गये, जो उन दोनों के भी मूल कारण हैं। उन दोनों ने उन्हें क्रमशः नमस्कार किया ॥८३॥ द्विज ! उन सनातन एवं परिपूर्णतम ब्रह्मज्योति ने उन दोनों को शुभाशीर्वाद दिया और पहले शंकर से कहा ॥८४॥

श्री भगवान् बोले—शिव ! समस्त बन्धुओं में भी आत्मा से बढ़कर कोई प्रिय नहीं होता है, अतः हे सुरेश्वर ! दक्ष को चन्द्रमा प्रदान कर अपनी रक्षा कीजिये ॥८५॥ तुम तपस्वियों में श्रेष्ठ, शान्त, वैष्णवों में प्रमुख और सभी जीवों में समभाव रखने वाले एवं हिंसा तथा क्रोध से हीन हो ॥८६॥ दक्ष क्रोधी, दुर्द्धर्ष (उद्धत) तथा तेजस्वी ब्रह्मपुत्र हैं। शिष्ट व्यक्ति दुर्द्धर्ष प्राणी से भयभीत होता है और दुर्द्धर्ष किसी से भी भयभीत नहीं होता है ॥८७॥ नारायण की ऐसी बातें सुनकर स्वयं शंकर ने हँसकर नीतिशास्त्र का निचोड़ तथा बीजरूप परमोत्तम वचन कहा ॥८८॥

शंकर बोले—मैं तप, तेज, समस्त सिद्धियाँ, सम्पत्ति और प्राण भी दे सकता हूँ किन्तु शरणागत का त्याग करने में असमर्थ हूँ ॥८९॥ क्योंकि जो भयवश शरणागत का त्याग करता है, उसे भी धर्म त्याग देता है और घोर शाप देकर चला जाता है ॥९०॥ इसलिए हे जगत्प्रभो ! मैं सब का त्याग कर सकता हूँ किन्तु धर्म का नहीं।

---

[1] क. ०श्च ब्रह्मसि०।

यश्च धर्मं सदा रक्षेद्धर्मस्तं परिरक्षति । धर्मं वेदेश्वर त्वं च किं मां ब्रूहि स्वमायया ॥९२॥
त्वं सर्वमाता स्रष्टा च हन्ता च परिणामतः । त्वयि भक्तिर्दृढा यस्य तस्य कस्माद्भयं भवेत् ॥९३॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा भगवान्सर्वभाववित् । चन्द्रं चन्द्राद्विनिष्कृष्य दक्षाय प्रददौ हरिः ॥९४॥
प्रतस्थावर्धचन्द्रश्च निर्व्याधिः शिवशेखरे । निजग्राह परं चन्द्रं विष्णुदत्तं प्रजापतिः ॥९५॥
यक्ष्मग्रस्तं च तं दृष्ट्वा दक्षस्तुष्टाव माधवम् । पक्षे पूर्णं क्षतं पक्षे तं चकार हरिः स्वयम् ॥९६॥
कृष्ण[1] एवं वरं दत्त्वा जगाम स्वालयं द्विज । दक्षश्चन्द्रं गृहीत्वा च कन्याभ्यः प्रददौ पुनः ॥९७॥
चन्द्रस्ताश्च परिप्राप्य विजहार दिवानिशम् । समं ददर्श ताः सर्वास्तत्प्रभृत्येव कम्पितः ॥९८॥
इत्येवं कथितं सर्वं किंचित्सृष्टिक्रमं मुने । श्रुतं च गुरुवक्त्रेण पुष्करे मुनिसंसदि ॥९९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
प्रसूतिवंशवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

सौतिरुवाच

भृगोः पुत्रश्च च्यवनः शुक्रश्च ज्ञानिनां वर। ऋतोरपि क्रिया भार्या बालखिल्यानसूयत ॥१॥

क्योंकि जो अपने धर्म से हीन है, वह समस्त धर्मों से बहिष्कृत है ।।९१।। और जो सदैव धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता है। ईश्वर! तुम धर्म को जानते हो। अतः अपनी माया से मोहित करते हुए मुझे यह क्यों कह रहे हो? ।।९२।। तुम्हीं सबकी माता, स्रष्टा और परिणामतः (अन्त में) हन्ता भी हो। तुममें जिसकी दृढ़ भक्ति होती है, उसे किससे भय हो सकता है ।।९३।। समस्त भावों के जानने वाले भगवान् ने शंकर की बातें सुनकर (सर्वांगपूर्ण) चन्द्रमा से (आधे) चन्द्रमा को निकाल कर दक्ष को सौंप दिया ।।९४।। चन्द्रमा का अर्धभाग रोगहीन होकर शिव के शिखर पर स्थित हुआ और विष्णु द्वारा दिये गये दूसरे भाग को प्रजापति दक्ष ने ग्रहण किया ।।९५।। दक्ष ने उस चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग से पीड़ित जानकर श्रीकृष्ण की स्तुति की। इस पर भगवान् ने चन्द्रमा को एक पक्ष में पूर्ण और दूसरे पक्ष में क्षीण (क्षय) बना दिया। द्विज! इस प्रकार भगवान् कृष्ण उन्हें वर देकर अपने घर चले गये और दक्ष ने उस चन्द्रमा को लेकर पुनः अपनी कन्याओं को सौंप दिया ।।९६-९७।। चन्द्रमा भी अपनी पत्नियों को पाकर दिन-रात विहार करने लगे और उसी दिन से उन सबको समभाव से देखने लगे ।।९८।। मुने! इस प्रकार मैंने पुष्कर-तीर्थ में मुनियों की सभा में गुरु के मुख से सृष्टिक्रम के संबंध में जो कुछ सुना था, वह तुम्हें बता दिया ।।९९।।

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नवाँ अध्याय समाप्त ।।९।।

अध्याय १०

जाति और संबंध का निर्णय

सौति बोले—ज्ञानियों में श्रेष्ठ भृगु के पुत्र च्यवन और शुक्र हुए। ऋतु की क्रिया नामक भार्या ने बालखिल्य

---

१ ख. ०ष्णस्तेभ्यो व ०।

त्रयः पुत्राश्चाङ्गिरसो बभूवुर्मुनिसत्तमाः । बृहस्पतिरुतथ्यश्च[1] शम्बरश्चापि शौनक ॥२॥
वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः । पराशरसुतः श्रीमान्कृष्णद्वैपायनो हरिः ॥३॥
व्यासपुत्रः शिवांशश्च शुकश्च ज्ञानिनां वरः । विश्वश्रवाः पुलस्त्यस्य यस्य पुत्रो धनेश्वरः ॥४॥

शौनक उवाच

अहो पुराणविदुषामत्यन्तं दुर्गमं वचः । न बुद्धं वचनं किंचिद्धनेशोत्पत्तिपूर्वकम् ॥५॥
अधुना कथितं जन्म धनेशस्येश्वरादिदम् । पुनर्भिन्नक्रमं जन्म ब्रवीषि कथमेव माम् ॥६॥

सौतिरुवाच

बभूवुरेते दिक्पालाः पुरा च परमेश्वरात् । पुनश्च ब्रह्मशापेन स च विश्रवसः सुतः ॥७॥
गुरवे दक्षिणां दातुमुतथ्यश्च धनेश्वरम् । ययाचे कोटिसौवर्णं यत्नतश्च प्रचेतसे ॥८॥
धनेशो विरसो भूत्वा तस्मै तद्दातुमुद्यतः । चकार भस्मसाद्विप्र पुनर्जन्म ललाभ सः ॥९॥
तेन विश्रवसः पुत्रः कुबेरश्च धनाधिपः । रावणः कुम्भकर्णश्च धार्मिकश्च विभीषणः ॥१०॥
पुलहस्य सुतो वात्स्यः शाण्डिल्यश्च रुचेः सुतः । सावर्णिगौतमाज्जज्ञे मुनिप्रवर एव सः ॥११॥
काश्यपः कश्यपाज्जातो भरद्वाजो बृहस्पतेः । (स्वयं वात्स्यश्च पुलहात्सावर्णिगौतमात्तथा ॥१२॥
शाण्डिल्यश्च रुचेः पुत्रो मुनिस्तेजस्विनां वरः ।) बभूवुः पञ्चगोत्राश्च एतेषां प्रवरा भवे ॥१३॥

नामक ऋषियों को उत्पन्न किया ॥१॥ शौनक ! अंगिरा से मुनिश्रेष्ठ बृहस्पति, उतथ्य और शम्बर नामक तीन पुत्र हुए ॥२॥ बशिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर और पराशर के श्रीमान् कृष्ण द्वैपायन (व्यास) पुत्र हुए, जो विष्णु के अंशावतार माने जाते हैं ॥३॥ व्यास के ज्ञानिप्रवर शुक पुत्र हुए, जो शिव के अंश माने जाते हैं। पुलस्त्य के विश्वश्रवा और विश्वश्रवा के धनेश्वर (कुबेर) पुत्र हुए ॥४॥

शौनक बोले—आश्चर्य है कि पुराणवेत्ताओं की बातें अत्यन्त दुर्बोध होती हैं। धनेश कुबेर की उत्पत्ति आदि की बातें मैं कुछ समझ नहीं सका। क्योंकि अभी आपने कुबेर की उत्पत्ति ईश्वर (श्रीकृष्ण) से बतायी है, तो फिर उनके जन्म के बारे में दूसरा क्रम आप मुझसे कैसे बता रहे हैं (अर्थात् कुबेर विश्वश्रवा के पुत्र कैसे हुए) ? ॥५-६॥

सौति बोले—प्राचीन काल में ये सब परमेश्वर द्वारा उत्पन्न होकर दिक्पाल हुए थे, किन्तु पुनः ब्रह्मा के शाप से विश्वश्रवा के पुत्र हुए ॥७॥ (एक बार) उतथ्य ने अपने गुरु प्रचेता को दक्षिणा देने के लिए कुबेर से एक करोड़ सुवर्ण-मुद्रायें माँगीं। कुबेर ने उनके साथ निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार किया। विप्र ! इस पर उतथ्य ने उन्हें भस्म कर दिया, जिससे कुबेर को पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ा ॥८-९॥ इस प्रकार विश्वश्रवा के धनाधीश्वर कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण और धार्मिक विभीषण पुत्र हुए ॥१०॥ पुलह के वात्स्य, रुचि के शाण्डिल्य और गौतम के मुनिश्रेष्ठ सावर्णि पुत्र हुए ॥११॥ कश्यप के काश्यप और बृहस्पति के भारद्वाज, पुत्र हुए। स्वयं वात्स्य पुलह से उत्पन्न हुए, गौतम से सावर्णि और रुचि से महातेजस्वी मुनि शाण्डिल्य आविर्भूत हुए ॥१२-१३॥ इन मुनियों के

---

१ क. ०श्च संवर्तश्चा० ।

बभूवुर्ब्रह्मणो वक्त्रादन्या ब्राह्मणजातयः । ताः स्थिता देशभेदेषु गोत्रशून्याश्च शौनक ॥१४॥
चन्द्रादित्यमनूनां च प्रवराः क्षत्रियाः स्मृताः । ब्रह्मणो बाहुदेशाच्चैवान्याः क्षत्रियजातयः ॥१५॥
ऊरुदेशाच्च वैश्याश्च पादतः शूद्रजातयः । तासां संकरजातेन बभूवुर्वर्णसंकराः ॥१६॥
गोपनापितभिल्लाश्च तथा मोदककूबरौ । ताम्बूलिस्वर्णकारौ च वणिग्जातय एव च ॥१७॥
इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सच्छूद्राः परिकीर्तिताः । शूद्राविशोस्तु करणोऽम्बष्ठो वैश्याद्द्विजन्मनोः ॥१८॥
विश्वकर्मा च विद्यायां वीर्याधानं चकार सः । ततो बभूवुः पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिणः ॥१९॥
मालाकारः कर्मकारः शङ्खकारः कुविन्दकः । कुम्भकारः कांस्यकारः षडेते शिल्पिनां वराः ॥२०॥
सूत्रधारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैव च । पतितास्ते ब्रह्मशापादयाज्या वर्णसंकराः ॥२१॥

शौनक उवाच

कथं देवो विश्वकर्मा वीर्याधानं चकार सः । शूद्रायामधमायां च कथं ते पतितास्त्रयः ॥२२॥
कथं तेषु ब्रह्मशापो ह्यभवत्केन हेतुना । हे पुराणविदां श्रेष्ठ तन्नः शंसितुमर्हसि ॥२३॥

सौतिरुवाच

घृताची कामतः कामं वेषं चक्रे मनोहरम् । तामपश्यद्विश्वकर्मा गच्छन्तीं पुष्करे पथि ॥२४॥
आगच्छत्तद्विलोकाच्च प्रसादोत्फुल्लमानसः । तां ययाचे स शृङ्गारं कामेन हृतचेतनः ॥२५॥

पाँच गोत्र परम प्रसिद्ध हुए। शौनक ! फिर ब्रह्मा के मुख से अन्य ब्राह्मण-जातियाँ उत्पन्न हुईं। वे विभिन्न देशों में अवस्थित हुईं और वे गोत्रशून्य हैं ॥१४॥ उसी प्रकार चन्द्र, सूर्य और मनु द्वारा उत्पन्न क्षत्रिय-गण श्रेष्ठ हैं और अन्य क्षत्रिय जाति के लोग ब्रह्मा के बाहु से उत्पन्न हुए ॥१५॥ उनके ऊरु देश से वैश्य और चरण से शूद्रों की उत्पत्ति हुई---इन शूद्र जातियों के सांकर्य से (अर्थात् एक जाति की स्त्री में दूसरी जाति के पुरुष द्वारा) वर्ण-संकर उत्पन्न हुए ॥१६॥ विप्रवर ! गोप, नापित (नाई), भील, हलवाई, कूबर (सूत ?), तमोली, सोनार और बनिया---ये सब सत् शूद्र कहलाते हैं। शूद्र में वैश्य से उत्पन्न जाति को करण और वैश्य से द्विजाति की स्त्री में उत्पन्न जाति को अम्बष्ठ कहते हैं ॥१७-१८॥ विश्वकर्मा ने विद्या में वीर्याधान किया। उससे नव पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जो शिल्पी कहे जाते हैं ॥१९॥ जैसे---माली, बढ़ई, शंख बनाने वाला, जुलाहा, कुम्हार और ठठेरा---ये छहों, शिल्पियों में श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥२०॥ सूत्रधार (बढ़ई), चित्रकार (मूर्ति बनाने वाला) और सोनार, ये तीनों ब्रह्मा के शाप से पतित, वर्णसंकर एवम् अयाज्य (यज्ञ आदि न कराने योग्य) माने गए हैं ॥२१॥

शौनक बोले---विश्वकर्मा ने देव होकर अधम शूद्र-स्त्री में वीर्याधान कैसे किया ? वे तीनों (सूत्रधार आदि) पतित कैसे हो गये ? ब्रह्मा ने उन्हें शाप क्यों दिया ? पुराणवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! यह सब हमें बताने की कृपा करें ॥२२-२३॥

सौति बोले---(एक बार) घृताची (नामक अप्सरा) कामवश कमनीय वेश बनाकर कामदेव के पास जा रही थी। पुष्कर के पास मार्ग में विश्वकर्मा ने उसे देख लिया ॥२४॥ देखते ही विश्वकर्मा का मन आनन्द से खिल उठा और कामासक्त होकर उन्होंने उससे सहवास की याचना की ॥२५॥ उस समय वह समस्त अलंकारों

रत्नालङ्कारभूषाढ्यां सर्वावयवकोमलाम् । यथा षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥२६॥
बृहन्नितम्बभारार्तां मुनिमानसमोहिनीम् । अतिवेगकटाक्षेण लोलां कामातिपीडिताम् ॥२७॥
तच्छ्रोणीं कठिनां दृष्ट्वा वायुनाऽपहृताम्शुकाम् । अतीवोच्चैः स्तनयुगं कठिनं वर्तुलं परम् ॥२८॥
सुस्मितं चारु वक्त्रं च शरच्चन्द्रविनिन्दकम् । पक्वबिम्बफलारक्तस्वोष्ठाधरमनोहरम् ॥२९॥
सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तं कस्तूरीबिन्दुसंयुतम् । कपोलमुज्ज्वलं शश्वन्महार्हमणिकुण्डलम् ॥३०॥
तामुवाच प्रियां शान्तां कामशास्त्रविशारदः । कामाग्निवर्धनोद्योगि वचनं श्रुतिसुन्दरम् ॥३१॥

विश्वकर्मोवाच

अयि क्व यासि ललिते मम प्राणाधिके प्रिये । मम प्राणांश्चापहृत्य तिष्ठ कान्ते क्षणं शुभे ॥३२॥
तवैवान्वेषणं कृत्वा भ्रमामि जगतीतलम् । स्वप्राणांस्त्यक्तुमिष्टोऽहं त्वां न दृष्ट्वा हुताशने ॥३३॥
त्वं कामलोकं यासीति श्रुत्वा रम्भामुखान्मया । आगच्छमहमेवाद्य चास्मिन्वर्त्मन्यवस्थितः ॥३४॥
अहो सरस्वतीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुरभीकृते ॥३५॥
रम[1] कान्ते मया सार्द्धं यूना कान्तेन शोभने । विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥३६॥
स्थिरयौवनसंयुक्ता त्वमेव चिरजीविनी । कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीषु च सुन्दरी ॥३७॥
मृत्युंजयवरेणैव मृत्युकन्या जिता मया । कुबेरभवनं गत्वा धनं लब्धं कुबेरतः ॥३८॥

से विभूषित थी। उसके सभी अंग कोमल थे। नित्य सुस्थिर यौवन वाली वह सोलह वर्ष की बाला दीख रही थी। उसके नितम्ब विशाल थे। वह मुनियों के भी मन को मोहित करने वाली थी। वह अत्यन्त वेग से कटाक्ष करने के कारण चंचल तथा अत्यन्त कामपीड़ित मालूम हो रही थी। उसका नितम्ब कठोर था। वायु उसके वस्त्र को उड़ा देता था। उसके दोनों कुच उन्नत, गोले और कठोर थे। शारदीय चन्द्रमा को लज्जित करने वाला उसका मुख मधुर मुसकान से युक्त था। उसके मनोहर ओठ पके बिम्बफल के समान लाल थे। कस्तूरी मिश्रित सिन्दूरबिन्दु उसके ललाट पर शोभित हो रहा था। उसके उज्ज्वल कपोलों पर बहुमूल्यक मणियों के बने कुण्डल चमक रहे थे। उस शान्त प्रिया से कामशास्त्र के पंडित विश्वकर्मा ने कामाग्निवर्धक तथा सुनने में सुन्दर (यह) वचन कहा—॥२६-३१॥

विश्वकर्मा बोले—सुन्दरी ! प्राणप्रिये ! मेरे प्राणों का अपहरण करके कहाँ जा रही हो ? कान्ते ! क्षण-भर ठहरो॥३२॥ मैं तुम्हें खोजने के लिए सारे भूमण्डल में घूम रहा हूँ और तुम्हारे न मिलने पर सोच लिया है कि अग्नि में (कूद कर) मर जाऊँगा॥३३॥ मैंने रम्भा के मुख से सुना कि तुम काम के पास जा रही हो। इसीलिए आज मैं इस मार्ग में आकर ठहर गया हूँ॥३४॥ सुन्दरी ! सरस्वती के तट पर मनोहर पुष्पवाटिका में, जो शीतल, मंद, सुगंध, वायु से सुगंधित हो उठी है, मुझ सुन्दर एवं युवक कान्त के साथ सहवास करो; क्योंकि चतुर पुरुष के साथ चतुर स्त्री का समागम अत्यन्त सुखप्रद होता है॥३५-३६॥ तुम चिरजीविनी एवं नित्ययौवना हो। तुम कामुकी, कोमलांगी और सुन्दरियों में भी सुन्दरी हो॥३७॥ मैंने मृत्युञ्जय (शिव) के वरदान से मृत्यु की कन्या को जीत लिया है। कुबेर के घर जाकर उनसे धन प्राप्त किया है। उसी प्रकार वरुण से रत्न की माला, वायु से

---

१ ख. यम०।

रत्नमाला च वरुणाद्वायोः स्त्रीरत्नभूषणम् । वह्निशुद्धं वस्त्रयुगं वह्नेः प्राप्तं महौजसः ॥३९॥
कामशास्त्रं कामदेवाद्योषिद्रञ्जनकारणम् । शृङ्गारशिल्पं यत्किंचिल्लब्धं चन्द्राच्च दुर्लभम् ॥४०॥
रत्नमालां वस्त्रयुग्मं सर्वाण्याभरणानि च । तुभ्यं दातुं हृदि कृतं प्राप्तं तत्क्षणमेव च ॥४१॥
गृहे तानि च संस्थाप्य चाऽऽगतोऽन्वेषणे भवे । विरामे सुखसंभोगे तुभ्यं दास्यामि सांप्रतम् ॥४२॥
कामुकस्य वचः श्रुत्वा घृताची सस्मिता मुने । ददौ प्रत्युत्तरं शीघ्रं नीतियुक्तं मनोहरम् ॥४३॥

घृताच्युवाच

त्वया यदुक्तं भद्रं तत्स्वीकरोम्यधुना परम् । किंतु सामयिकं वाक्यं ब्रवीष्यामि स्मरातुर ॥४४॥
कामदेवालयं यामि कृतवेषा च तत्कृते । यद्दिने यत्कृते यामो वयं तेषां च योषितः ॥४५॥
अद्याहं कामपत्नी च गुरुपत्नी तवाधुना । त्वयोक्तमधुनेदं च पठितं [1]कामदेवतः ॥४६॥
विद्यादाता मन्त्रदाता गुरुर्लक्षगुणैः पितुः । मातुः सहस्रगुणवान्नास्त्यन्यस्तत्समो गुरुः ॥४७॥
गुरोः शतगुणैः पूज्या गुरुपत्नी श्रुतौ श्रुता । पितुः शतगुणं पूज्या यथा माता विचक्षणः ॥४८॥
मात्रा समागमे सूनोर्यावान्दोषः श्रुतौ श्रुता । ततो लक्षगुणो दोषो गुरुपत्नीसमागमे ॥४९॥
मातरित्येव शब्देन यां च संभाषते नरः । सा मातृतुल्या सत्येन धर्मः साक्षी सतामपि ॥५०॥
तया हि संगतो यः स्यात्कालसूत्रं प्रयाति सः । तत्र घोरे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५१॥

स्त्री समुचित रत्नों के भूषण, महान् ओजस्वी अग्नि से शुद्ध किये दो वस्त्र और कामदेव से कामशास्त्र प्राप्त किया है जो स्त्रियों के लिए मनोरञ्जन की वस्तु है। चन्द्रमा से दुर्लभ श्रृंगारकला प्राप्त की है ॥३७-४०॥ वह रत्नमाला, दोनों वस्त्र और समस्त आभूषण तुम्हें देने के लिए मैंने उसी समय मन में सोच लिया था ॥४१॥ उन वस्तुओं को घर में रखकर तुम्हें खोजने के लिए मैं यहाँ आया। इस समय तुम्हारे साथ सुख-सम्भोग करके पश्चात् तुम्हें वह सब सौंप दूंगा ॥४२॥ मुने! कामुक की बातें सुनकर मुसकुराती हुई घृताची उसे नीतियुक्त सुन्दर उत्तर तुरन्त देने लगी ॥४३॥

घृताची बोली—हे कामातुर! तुमने जो सुन्दर बात कही है, उसे मैं स्वीकार करती हूँ; किन्तु इस समय मैं तुमसे कुछ सामयिक बातें कहना चाहती हूँ ॥४४॥ मैं कामदेव के लिए सुन्दर वेश बनाकर उसी के घर जा रही हूँ; क्योंकि हम लोग जिस दिन जिसके लिए (वेष बनाकर) जाती हैं, उस दिन उसी की स्त्रियाँ हो जाती हैं। आज मैं काम की पत्नी और तुम्हारी गुरुपत्नी हूँ। क्योंकि तुमने अभी कहा है कि 'मैंने कामदेव से पढ़ा है।' ॥४५-४६॥ विद्यादाता और मन्त्रदाता गुरु पिता से लाख गुना और माता से सहस्र गुना अधिक (मान्य) है। दूसरा उसके समान गुरु नहीं है ॥४७॥ विद्वन्! वेद में यह बात सुनी गयी है कि गुरु से गुरुपत्नी उसी तरह सौगुना अधिक पूज्य है जैसे पिता से सौगुना अधिक माता ॥४८॥ माता के साथ समागम करने पर पुत्र के लिए जितने दोष वेद में सुने गये हैं, उससे लाख गुना अधिक दोष गुरुपत्नी के समागम से प्राप्त होता है ॥४९॥ मनुष्य जिसको 'माता' शब्द से संबोधित करके बात-चीत करता है, वह यथार्थ में उसकी माता के तुल्य है क्योंकि सज्जनों का भी साक्षी धर्म ही है ॥५०॥ इसलिए उसके साथ जो समागम करता है, वह कालसूत्र (नरक) को प्राप्त होकर वहाँ घोर यातना

---

1 क. ०मवेतदः।

मात्रा सह समायोगे ततो दोषश्चतुर्गुणः । सार्द्धं च गुरुपत्न्या च तल्लक्षगुण एव च ।।५२।।
कुम्भीपाके पतत्येव यावद्वै ब्रह्मणो वयः । प्रायश्चित्तं पापिनश्च तस्य नैव श्रुतौ श्रुतम् ।।५३।।
चक्राकारं कुलालस्य तीक्ष्णधारं च खड्गवत् । वसामूत्रपुरीषैश्च परिपूर्णं सुदुस्तरम् ।।५४।।
शूलवत्कृमिसंयुक्तं तप्तमग्निसमं द्रवत् । पापिनां तद्विहारं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ।।५५।।
यावान्दोषो हि पुंसां च गुरुपत्नीसमागमे । तावांश्च गुरुपत्न्या वै तत्र चेत्कामुकी यदि ।।५६।।
अद्य यास्यामि कामस्य मन्दिरं तस्य कामिनी । वेषं कृत्वाऽऽगमिष्यामि त्वत्कृतेऽहं दिनान्तरे ।।५७।।
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा रुरोष ताम् । शशाप शूद्रयोनिं च व्रजेति जगतीतले ।।५८।।
घृताची तद्वचः श्रुत्वा तं शशाप सुदारुणम् । लभ जन्म भवे त्वं च स्वर्गभ्रष्टो भवेति च ।।५९।।
घृताची कारुमुक्त्वा च साऽगच्छत्काममन्दिरम् । कामेन सुरतं कृत्वा कथयामास तां कथाम् ।।६०।।
सा भारते च कामोक्त्या गोपस्य मदनस्य च । पत्न्यां प्रयागे नगरे लेभे जन्म च शौनक ।।६१।।
जातिस्मरा तत्प्रसूता बभूव च तपस्विनी । वरं न वव्रे धर्मिष्ठा तपस्यायां मनो दधौ ।।६२।।
तपश्चकार तपसा तप्तकाञ्चनसंनिभा । दिव्यं च शतवर्षं सा गङ्गातीरे मनोरमे ।।६३।।
वीर्येण सुरकारोश्च[1] नव पुत्रान्प्रसूय सा । पुनः स्वर्लोकं गत्वा च सा घृताची बभूव ह ।।६४।।

तब तक भोगता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है ।।५१।। माता के साथ समागम करने से उससे चौगुना और गुरुपत्नी के साथ समागम करने से उससे लाख गुना अधिक दोष लगता है ।।५२।। और वह ब्रह्मा की आयु की अवधि तक कुम्भीपाक नरक में पड़ा रहता है । ऐसे पापियों का प्रायश्चित्त वेद में सुना ही नहीं गया है ।।५३।। कुम्हार के चक्के के समान गोलाकार, खड्ग के समान तीक्ष्ण धार वाला, मांस, मूत्र और मल से भरा हुआ अत्यन्त दुस्तर, शूल के समान कीड़ों से युक्त और प्रज्वलित अग्नि के समान तपता एवं पिघलता हुआ वह कुम्भीपाक नरक पापियों के लिए कर्मभोग का स्थान बताया गया है ।।५४-५५।। गुरुपत्नी के साथ समागम करने पर पुरुषों को जितना दोष लगता है उतना ही दोष गुरुपत्नी को भी लगता है, यदि वह कामुकी होकर उस पुरुष के साथ सहवास करती है ।।५६।। आज मैं कामदेव की कामिनी हूँ, अतः उसी के यहाँ जा रही हूँ। तुम्हारे लिए भी दूसरे दिन (उत्तम) वेष बनाकर आऊँगी ।।५७।। घृताची की ऐसी बातें सुनकर विश्वकर्मा ने उस पर क्रोध किया और उसे शाप दिया कि—तुम भूतल पर शूद्र-योनि में उत्पन्न हो ।।५८।। घृताची ने भी उनकी बात सुनकर उन्हें दारुण शाप दिया कि तुम भी स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करो ।।५९।। विश्वकर्मा से इस प्रकार कहकर घृताची काम के भवन में पहुँची । उससे सम्भोग करने के उपरान्त वह घटना बता दी ।।६०।। काम को बताने के अनन्तर घृताची ने भारत में तीर्थराज प्रयाग नगर में मदन नामक गोप के यहाँ जन्म ग्रहण किया। शौनक ! वहाँ उत्पन्न होने पर उसे पूर्व जन्म का स्मरण बना रहा। अतः उसने किसी वर का वरण न करके तपस्या करने की ही मन में ठान ली ।।६१-६२।। गंगा के मनोहर तट पर तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्ण वाली उस घृताची ने दिव्य सौ वर्षों तक तप किया ।।६३।। पश्चात् देवों के शिल्पी (विश्वकर्मा) के वीर्य द्वारा नौ पुत्रों को उत्पन्न कर घृताची स्वर्ग को चली गयी ।।६४।।

---

१ क. ०श्च चाष्टौ पु० ।

शौनक उवाच

कथं वीर्यं सा दधार सुरकारोस्तपस्विनी । पुत्रान्नव[1] प्रसूता च कुत्र वा कति वासरान् ॥६५॥

सौतिरुवाच

विश्वकर्मा तु तच्छापं समाकर्ण्य रुषाऽन्वितः । जगाम ब्रह्मणः स्थानं शोकेन हृतचेतनः ॥६६॥
नत्वा स्तुत्वा च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम् । ललाभ जन्म ब्राह्मण्यां पृथिव्यामाज्ञया[2] विधेः ॥६७॥
स एव ब्राह्मणो भूत्वा भुवि कारुर्बभूव ह । नृपाणां च गृहस्थानां नानाशिल्पं चकार ह ॥६८॥
शिल्पं च कारयामास सर्वेभ्यः सर्वतः सदा । विचित्रं विविधं शिल्पमाश्चर्यं सुमनोहरम् ॥६९॥
एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च । स्नातुं जगाम गङ्गां स चापश्यत्तत्र कामिनीम् ॥७०॥
घृताचीं नवरूपां च युवतिं तां तपस्विनीम् । जातिस्मरां तां बुबुधे स च जातिस्मरो द्विजः ॥७१॥
दृष्ट्वा सकामः सहसा बभूव हृतचेतनः । उवाच मधुरं शान्तः शान्तां तां च तपस्विनीम् ॥७२॥

ब्राह्मण उवाच

अहोऽधुना त्वमत्रैव घृताचि सुमनोहरे[3] । मा मां स्मरसि रम्भोरु विश्वकर्माऽहमेव च ॥७३॥
शापमोक्षं करिष्यामि भज मां तव सुन्दरि । त्वत्कृतेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः ॥७४॥

शौनक बोले––उस तपस्विनी ने विश्वकर्मा का वीर्य कैसे धारण किया? नौ पुत्रों को कहाँ जन्म दिया? और कितने दिनों तक पृथ्वी पर रही? ॥६५॥

सौति बोले––विश्वकर्मा उसका शाप सुनकर क्रुद्ध हुए और शोक करते हुए ब्रह्मा के यहाँ चले गये ॥६६॥ ब्रह्मा को प्रणाम कर के उन्होंने उस घटना को कह सुनाया। पश्चात् ब्रह्मा की आज्ञा से पृथ्वी पर एक ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए ॥६७॥ ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होकर भी वे शिल्पी का ही कार्य करते थे जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने राजाओं और अन्य गृहस्थों के यहाँ अनेक प्रकार के शिल्प-कार्य किये ॥६८॥ वे सदा सब लोगों से शिल्प का ही कार्य कराते थे। उनका शिल्प विविध, विचित्र, आश्चर्यजनक तथा अत्यन्त मनोहर होता था ॥६९॥ एक बार वे प्रयाग में राजा के यहाँ कुछ कारीगरी का काम करके स्नान करने के लिए गंगाजी गए। वहाँ उन्हें एक सुन्दरी तपस्विनी दिखायी पड़ी ॥७०॥ द्विज! (पूर्वजन्म का स्मरणकर्ता) जातिस्मर होने के कारण उन्होंने उस नव-युवती घृताची को, जिसे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण था, पहचान लिया ॥७१॥ अतः उसे देखते ही वे सहसा काम-विह्वल हो गये। पुनः शान्त होकर उन्होंने उस शान्त तपस्विनी से मधुर वाणी में कहा ॥७२॥

ब्राह्मण बोले––अहा! अत्यन्त मनोहर रूप धारण करने वाली घृताची! तुम इस समय यहीं हो। हे कदलीस्तम्भ के समान ऊरु वाली! मैं भी विश्वकर्मा हूँ। क्या तुम मुझे पहचान रही हो ॥७३॥ सुन्दरी! मैं तुम्हें शापमुक्त कर दूंगा, मेरे साथ समागम करो। तुम्हारे ही लिए (कामदेव) मेरे मन को अत्यन्त जला रहा

---

१ क. ०त्रानष्टौ प्र०। २ ख. ०थिमां साऽऽज्ञ०। ३ क. ०रे मां संस्म०।

द्विजस्य वचनं श्रुत्वा घृताची नवरूपिणी। उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं वचः ॥७५॥

गोपिकोवाच

तद्दिने कामकान्ताऽहमधुना च तपस्विनी। कथं त्वया संगता स्यां गङ्गातीरे च भारते ॥७६॥
विश्वकर्मन्निदं पुण्यं कर्मक्षेत्रं च भारतम्। अत्र यत्क्रियते कर्म भोगोऽन्यत्र शुभाशुभम् ॥७७॥
धर्मी मोक्षकृते जन्म प्रलभ्य तपसः फलात्। निबद्धः कुरुते कर्म मोहितो विष्णुमायया ॥७८॥
माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत्। तस्मै ददाति श्रीकृष्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम् ॥७९॥
यो मूढो विषयासक्तो लब्धजन्मा च भारते। विहाय कृष्णं सर्वेशं स मुग्धो विष्णुमायया ॥८०॥
सर्वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा। घृताची सुरवेश्याऽहमधुना गोपकन्यका ॥८१॥
तपः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे। नात्र स्थलं च क्रीडायाः स्थिरस्त्वं भव कामुक ॥८२॥
अन्यत्र च कृतं पापं गङ्गायां च विनश्यति। गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत् ॥८३॥
तत्तु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति। सद्यो वा कामतः कृत्वा निवृत्तश्च भवेत्पुनः ॥८४॥
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्माऽनिलाकृतिः। जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम् ॥८५॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे। पुष्पचन्दनवातेन संततं सुरभीकृते ॥८६॥

है ॥७४॥ ब्राह्मण की बात सुनकर नवीन रूप धारण करने वाली शान्त घृताची ने मधुर एवं नीतियुक्त वचन कहा ॥७५॥

गोपिका बोली—उस दिन मैं काम की पत्नी थी और आज तपस्विनी हूँ और फिर इस भारत में गंगा के तट पर तुम्हारे साथ कैसे समागम कर सकती हूँ ॥७६॥ क्योंकि हे विश्वकर्मन्! यह भारत पुण्य कर्मक्षेत्र है। यहाँ जो कुछ शुभाशुभ कर्म किया जाता है उसका भोग अन्यत्र प्राप्त होता है ॥७७॥ धर्मात्मा पुरुष तपोबल से मोक्ष के लिए यहाँ (भारत में) जन्म लेता है और विष्णु की माया से मोहित एवं बद्ध होकर कर्म करता है ॥७८॥ क्योंकि सर्वसमर्थ नारायणी माया जिस पर प्रसन्न होती है उसी को भगवान् श्रीकृष्ण अपनी भक्ति और उसका अभिलषित मन्त्र प्रदान करते हैं ॥७९॥ भारत में जन्म ग्रहण कर जो मूर्ख सर्वेश भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर विषय-वासना में ही आसक्त रहता है, उसे भगवान् विष्णु की माया से मोहित ही जानना चाहिए ॥८०॥ देव ! मैं पूर्वजन्म की सब बातों का स्मरण कर रही हूँ। मैं पहले की देववेश्या घृताची हूँ और इस समय गोप की कन्या हूँ ॥८१॥ अत्यन्त पुण्यप्रद गंगा-तट पर मैं मोक्ष के लिए तप कर रही हूँ। अतः हे कामुक! तुम इस समय शान्तचित्त रहो, क्योंकि यह क्रीड़ा करने का स्थान नहीं है ॥८२॥ अन्यत्र जो पाप किया जाता है वह गंगा में नष्ट होता है और गंगा के तट पर किया हुआ पाप तुरन्त लाख गुना बढ़ जाता है ॥८३॥ वह पाप नारायण क्षेत्र (गंगा के किनारे चार हाथ तक की भूमि) में तप के द्वारा ही विनष्ट होता है। आपाततः या कामना वश किया गया भी वह पाप निवृत्त हो जाता है ॥८४॥ वायु के आकार वाले विश्वकर्मा ने घृताची की बात सुनकर उसे साथ लेकर चन्दनों के आलय मलयाचल पर चले गये ॥८५॥ मलय की उपत्यका में पुष्पों की मनोहर शय्या लगायी, जो पुष्पों और चन्दनों से सम्पृक्त वायु से अत्यन्त सुगन्धित हो रही थी। निर्जन वन में उसी शय्या पर उन्होंने उसके साथ सुख-सम्भोग

चकार सुखसंभोगं तया स विजने वने। पूर्णं द्वादशवर्षं च बुबुधे न दिवानिशम् ॥८७
बभूव गर्भः कामिन्याः परिपूर्णः सुदुर्वहः। सा सुषाव च तत्रैव पुत्रान्नव[1] मनोहरान् ॥८८
कृतशिक्षितशिल्पांश्च ज्ञानयुक्तांश्च शौनक। पूर्वप्राक्तनतो योग्यान्बलयुक्तान्विचक्षणान् ॥८९
मालाकारान्कर्मकारान्छङ्खकारान्कुविन्दकान्। कुम्भकारान्सूत्रकारान्स्वर्णचित्रकरांस्तथा ॥९०
तौ च तेभ्यो वरं दत्त्वा तान्संस्थाप्य महीतले। मानवीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥९१
स्वर्णकारः स्वर्णचौर्याद्ब्राह्मणानां द्विजोत्तम। बभूव पतितः सद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा ॥९२
सूत्रकारो[2] द्विजानां तु शापेन पतितो भुवि। शीघ्रं च यज्ञकाष्ठानि न ददौ तेन हेतुना ॥९३
व्यतिक्रमेण चित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा। पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानां च कोपतः ॥९४
कश्चिद्वणिग्विशेषश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः। स्वर्णचौर्यादिदोषेण पतितो ब्रह्मशापतः ॥९५
कुलटायां च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्यतः। बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः ॥९६
अट्टालिकाकारबीजात्कुम्भकारस्य योषिति। बभूव कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः ॥९७
कुम्भकारस्य बीजेन सद्यः कोटकयोषिति। बभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि ॥९८
सद्यः क्षत्रियबीजेन राजपुत्रस्य योषिति। बभूव तीवरश्चैव पतितो जारदोषतः ॥९९
तीवरस्य तु बीजेन तैलकारस्य योषिति। बभूव पतितो दस्युर्लेटश्च परिकीर्तितः ॥१००

किया। पूरे बारह वर्ष तक (सुखसम्भोग में लीन रहने के कारण) उन्हें दिन-रात का कुछ भी ज्ञान न रहा पश्चात् उस कामिनी को परिपूर्ण और अत्यन्त दुर्वह गर्भ रह गया। उसने उसी स्थान पर नौ सुन्दर पुत्रों को उत्प किया। शौनक! उन बालकों को भलीभाँति शिल्प की शिक्षा देकर उन्हें ज्ञानी, योग्य, बलवान् और बुद्धिमान् बनाया पश्चात् उन्हें माली, बढ़ई, शंख बनाने वाले, जुलाहा, कुम्हार, सूत्रकार, स्वर्णकार और चित्रकार का काम सौंप क वरदान दिया। अन्त में उन लोगों को भूतल पर स्थापित करके वे दोनों अपने मानवीय शरीर का त्याग कर अप लोक को चले गये॥८६-९१॥ द्विजोत्तम! स्वर्णकार ब्राह्मणों के सोने की चोरी करने के कारण उसी समय ब्रह्मशा से पतित हो गया॥९२॥ सूत्रकार भी यज्ञ के निमित्त ब्राह्मणों को तत्क्षण लकड़ी न देने से उनके शाप से उसी सम पतित हो गया॥९३॥ इसी प्रकार चित्रकार भी चित्रों के उलटफेर कर देने से ब्राह्मणों के शाप से पतित ह गया॥९४॥ एक विशेष प्रकार का बनिया भी सोनारों के साथ रहकर सोने की चोरी में साथ देने के कार ब्राह्मण-शाप से पतित हो गया॥९५॥ चित्रकार के वीर्य से कुलटा शूद्रा स्त्री में राजगीर उत्पन्न हुआ। जार-क (व्यभिचारदोष) से उत्पन्न होने के कारण वह भी पतित हो गया॥९६॥ राजगीर से कुम्हार की स्त्री में उत्प कोटक भी, जो घर बनाता है, पतित हो गया॥९७॥ कुम्हार के वीर्य से कोटक की स्त्री में कुटिल तेली उत्प हुआ। वह भी पतित कहलाया॥९८॥ क्षत्रिय के बीज से राजपुत्र की स्त्री में तीवर उत्पन्न हुआ। वह भी व्यभि चार दोष के कारण पतित कहलाया॥९९॥ तीवर के वीर्य से तेली की स्त्री में पतित दस्यु उत्पन्न हुआ जिसकी संज्ञा लेट भी हुई॥१००॥ तीवर की कन्या में लेट ने छह पुत्रों को उत्पन्न किया जिनके नाम ये हैं—माल्ल, मन्त्र

१ क. ०त्रानष्टौ म०। २ छ. ख. ०त्रधारो०।

लेटस्तीवरकन्यायां जनयामास षट् सुतान्। माल्लं मन्त्रं मातरं च भण्डं कोलं कलंदरम्॥१०१॥
ब्राह्मण्यां शूद्रवीर्येण पतितो जारदोषतः। सद्यो बभूव चाण्डालः सर्वस्मादधमोऽशुचिः॥१०२॥
तीवरेण च चण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह। चर्मकार्यां च चण्डालान्मांसच्छेदो बभूव ह॥१०३॥
मांसच्छेद्यां तीवरेण कोंचश्च परिकीर्तितः। कोंचस्त्रियां तु कैवर्तात्कर्तारः परिकीर्तितः॥१०४॥
सद्यश्चाण्डालकन्यायां लेटवीर्येण शौनक। बभूवतुस्तौ द्वौ पुत्रौ दुष्टौ हड्डिडमौ तथा॥१०५॥
क्रमेण हड्डिकन्यायां सद्यश्चाण्डालवीर्यतः बभूवुः पञ्च पुत्राश्च दुष्टा वनचराश्च ते॥१०६॥
लेटात्तीवरकन्यायां गङ्गातीरे च शौनक। बभूव सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्तितः॥१०७॥
गङ्गापुत्रस्य कन्यायां वीर्याद्वै वेषधारिणः। बभूव वेषधारी च पुत्रो युङ्गी प्रकीर्तितः॥१०८॥
वैश्यात्तीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी बभूव ह। शुण्डियोषिति वैश्यात्तु पौण्ड्रकश्च बभूव ह॥१०९॥
क्षत्रात्करणकन्यायां राजपुत्रो बभूव ह। राजपुत्र्यां तु करणादागरीति प्रकीर्तितः॥११०॥
क्षत्रवीर्येण वैश्यायां कैवर्तः परिकीर्तितः। कलौ तीवरसंसर्गाद्धीवरः पतितो भुवि॥१११॥
तीवर्यां धीवरात्पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः। रजक्यां तीवराच्चैव कोयालीति बभूव ह॥११२॥
नापिताद्गोपकन्यायां सर्वस्वी तस्य योषिति। क्षत्राद्बभूव व्याधश्च बलवान्मृगहिंसकः॥११३॥
तीवराच्छुण्डिकन्यायां बभूवुः सप्त पुत्रकाः। ते कलौ हड्डिसंसर्गाद्बभूवुर्दस्यवः सदा॥११४॥
ब्राह्मण्यामृषिवीर्येण ऋतोः प्रथमवासरे। कुत्सितश्चोदरे जातः कूदरस्तेन कीर्तितः॥११५॥

मातर, भण्ड, कोल और कलन्दर। ॥१०१॥ जार कर्म के द्वारा शूद्र-वीर्य से ब्राह्मण में उत्पन्न पुरुष सबसे अधम एवं अपवित्र चाण्डाल हुआ। ॥१०२॥ तीवर से चाण्डाल की कन्या में चर्मकार उत्पन्न हुआ। चर्मकार की स्त्री में चाण्डाल द्वारा मांसच्छेद (बहेलिया) उत्पन्न हुआ॥१०३॥ मांसच्छेद की स्त्री में तीवर से 'कोंच' की उत्पत्ति हुई और कोञ्च की स्त्री में कैवर्त से कर्त्तार की उत्पत्ति हुई॥१०४॥ शौनक! चाण्डाल की कन्या में लेट के वीर्य से 'हड्डि और 'डम' नामक दो दुष्ट पुत्र उत्पन्न हुए॥१०५॥ क्रमशः हड्डि की कन्या में चाण्डाल के वीर्य से पांच दुष्ट पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जो वनचर कहे जाते हैं॥१०६॥ शौनक! गंगा के किनारे लेट द्वारा तीवर की कन्या में जो बालक उत्पन्न हुआ वह गंगापुत्र कहलाया॥१०७॥ और गंगापुत्र की कन्या में वेषधारी के वीर्य से वेषधारी पुत्र उत्पन्न हुआ जो 'युंगी' कहलाता है॥१०८॥ वैश्य से तीवर की कन्या में शुण्डी की उत्पत्ति हुई और शुण्डी की स्त्री में वैश्य से 'पौण्ड्रक' उत्पन्न हुआ॥१०९॥ क्षत्रिय से करण-कन्या में राजपुत्र और राजपुत्र की कन्या में करण द्वारा 'आगरी' उत्पन्न हुआ॥११०॥ क्षत्रिय के वीर्य से वैश्य की स्त्री में कैवर्त्त उत्पन्न हुआ। कलि में तीवर के संसर्ग से पतित धीवर पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ॥१११॥ धीवर से तीवर की स्त्री में उत्पन्न पुत्र रजक (धोबी) कहलाया। तीवर से धोबिन में कोयालि की उत्पत्ति हुई॥११२॥ नापित से गोप की कन्या में उत्पन्न पुत्र 'सर्वस्वी' और उसकी स्त्री में क्षत्रिय से व्याध की उत्पत्ति हुई, जो बलवान् और पशुहिंसक हुआ॥११३॥ तीवर से शुण्डि की कन्या में सात पुत्र उत्पन्न हुए, जो कलियुग में हड्डि का साथ करने से सदा के लिए दस्यु हो गए॥११४॥ ऋतुकाल के प्रथम दिन ब्राह्मणी में ऋषि के वीर्य से जो कुत्सित गर्भ रह गया वह उत्पन्न होने पर 'कूदर' कहलाया

तदशौचं विप्रतुल्यं पतितो ऋतुदोषतः। सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले ॥११६॥
क्षत्रवीर्येण वैश्यायामृतोः प्रथमवासरे । जातः पुत्रो महादस्युर्बलवांश्च धनुर्धरः ॥११७॥
चकार वागतीतं च क्षत्रियेणापि वारितः। तेन जात्या स पुत्रश्च वागतीतः प्रकीर्तितः ॥११८॥
क्षत्रवीर्येण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः । बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूवुर्म्लेच्छजातयः ॥११९॥
अविद्धकर्णाः क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः। शौचाचारविहीनाश्च दुर्धर्षा धर्मवर्जिताः ॥१२०॥
म्लेच्छात्कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव । जोलात्कुविन्दकन्यायां शराङ्कः परिकीर्तितः ॥१२१॥
वर्णसंकरदोषेण [1]बह्व्यश्चाश्रुतजातयः। तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुं क्षमो द्विज ॥१२२॥
वैद्योऽश्वनीकुमारेण जातो विप्रस्य योषिति। वैद्यवीर्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः ॥१२३॥
ते च ग्राम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः। तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालग्राहिणो भुवि ॥१२४॥

शौनक उवाच

कथं ब्राह्मणपत्न्यां तु सूर्यपुत्रोऽश्विनीसुतः । अहो केनाविवेकेन वीर्याधानं चकार ह ॥१२५॥

सौतिरुवाच

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः। ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्याने च निर्जने ॥१२६॥

॥११५॥ उसका अशौच ब्राह्मण के समान ही होता है। वह (माता के) ऋतुदोष के कारण पतित हुआ और सद्यः कोटक के संसर्ग से वह भूतल पर अधम भी हुआ ॥११६॥ उसी प्रकार वैश्य की स्त्री में ऋतुकाल के प्रथम दिन में ही क्षत्रिय के वीर्य से उत्पन्न पुत्र 'महादस्यु' बलवान् और धनुर्धारी हुआ। उसने क्षत्रिय के मना करने पर भी उसके वचन के विरुद्ध कार्य किया, अतः जन्म से वह वागतीत कहलाया ॥११७-११८॥ क्षत्रिय के वीर्य से शूद्र स्त्री में ऋतुदोष के पाप से बलवान् एवं प्रचंड म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं ॥११९॥ वे म्लेच्छ अविद्धकर्ण (कान न छेदाने-वाले), क्रूर, निर्भय, रण में कठिनाई से जीते जाने वाले, पवित्रता एवं आचार से हीन दुर्द्धर्ष और धर्मरहित हुए ॥१२०॥ म्लेच्छ से कुविन्द की कन्या में 'जोला' जाति उत्पन्न हुई और जोला से कुविन्द की कन्या में 'शरांक' उत्पन्न हुआ ॥१२१॥ द्विज ! इस प्रकार वर्णसंकर दोष से अनेक अश्रुत (न सुनी हुई) जातियाँ उत्पन्न हुईं। उनके नाम और संख्या बताने में भला कौन समर्थ है? ॥१२२॥

अश्विनीकुमार द्वारा ब्राह्मण-स्त्री में वैद्य उत्पन्न हुआ और वैद्य द्वारा शूद्र स्त्रियों से अनेक जनों की उत्पत्ति हुई। वे लोग ग्राम्य गुणों के जानकार और मन्त्र, औषध के प्रयोग में परायण हुए। पुनः उनके द्वारा शूद्र स्त्री से सँपेरों की उत्पत्ति हुई ॥१२३-१२४॥

शौनक बोले—ब्राह्मण-पत्नी में सूर्यपुत्र अश्विनी-कुमार ने यह दुस्साहस कैसे किया? उन्होंने किस अवि-वेक वश उसमें वीर्याधान किया ॥१२५॥

सौति बोले—कोई ब्राह्मणी तीर्थयात्रा कर रही थी। किसी निर्जन पुष्पवाटिका में उसके पहुँचने पर शान्त अश्विनी-कुमार उसे देख कर कामपीड़ित हो गए। प्रयत्नपूर्वक उसके द्वारा रोके जाने पर भी बलवान् अश्विनीकुमार

---

१ क. ०हव्यश्च शठजा०।

तया निवारितो यत्नाद्बलेन बलवान्सुरः । अतीव सुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्याधानं चकार सः ॥१२७॥
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे । सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसंनिभः ॥१२८॥
सपुत्रा स्वामिनो गेहं जगाम व्रीडिता सदा । स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसंकटम् ॥१२९॥
विप्रो रोषेण तत्याज तं च पुत्रं स्वकामिनीम् । सरिद्बभूव योगेन सा च गोदावरी स्मृता ॥१३०॥
पुत्रं चिकित्साशास्त्रं च पाठयामास यत्नतः । नानाशिल्पं च मन्त्रं च स्वयं स रविनन्दनः ॥१३१॥
विप्रश्च वेतनाज्ज्योतिर्गणनाच्च निरन्तरम् । वेदधर्मपरित्यक्तो बभूव गणको भुवि ॥१३२॥
लोभी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान् । ग्रहणे मृतदानानामग्रदानी बभूव सः ॥१३३॥
कश्चित्पुमान्ब्रह्मयज्ञे यज्ञकुण्डात्समुत्थितः । स सूतो धर्मवक्ता च मत्पूर्वपुरुषः स्मृतः ॥१३४॥
पुराणं पाठयामास तं च ब्रह्मा कृपानिधिः । पुराणवक्ता सूतश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः ॥१३५॥
वैश्यायां सूतवीर्येण पुमानेको बभूव ह । स भट्टो वावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः ॥१३६॥
एवं ते कथितः किंचित्पृथिव्यां जातिनिर्णयः । वर्णसंकरदोषेण बह्व्योऽन्याः सन्ति जातयः ॥१३७॥
संबन्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु[1] सर्वतः । तत्त्वं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥१३८॥
पिता तातस्तु जनको जन्मदाता प्रकीर्तितः अम्बा माता च जननी जनयित्री प्रसूरपि ॥१३९॥

ने उसे अत्यन्त सुन्दरी देखकर (उसमें) वीर्याधान कर ही डाला। उसने तुरन्त उस गर्भ को उसी मनोहर पुष्पोद्यान में त्याग दिया, किन्तु उससे एक तप्त सुवर्ण की भाँति कान्तिमान् पुत्र उत्पन्न हो गया ॥१२६-१२८॥ पश्चात् लज्जित होकर वह स्त्री उस पुत्र को साथ लिये अपने पति के घर लौट गयी। वहाँ उसने अपने पति से मार्ग की घटना बता दी। ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर पुत्र और स्त्री दोनों का त्याग कर दिया। अनन्तर वह स्त्री योग द्वारा 'गोदावरी' नामक नदी में परिणत हो गयी और उस पुत्र को स्वयं रविनन्दन अश्विनीकुमार ने बड़े प्रयत्न से चिकित्साशास्त्र, नाना प्रकार के शिल्प तथा मंत्र पढ़ाये ॥१२९-१३१॥ किन्तु वह ब्राह्मण निरन्तर नक्षत्रों की गणना करने और वेतन लेने से वैदिक धर्म से भ्रष्ट हो इस भूतल पर गणक हो गया। उस लोभी ब्राह्मण ने ग्रहण के समय तथा मृतकों के दान लेने के समय शूद्रों से भी अग्रदान ग्रहण किया था; इसलिए अग्रदानी हुआ ॥१३२-१३३॥

एक पुरुष ब्राह्मणों के यज्ञ में यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न हुआ। वह धर्मवक्ता 'सूत' कहलाया। वही धर्मवक्ता सूत हमारा पूर्वज है ॥१३४॥ कृपानिधान ब्रह्मा ने उसे पुराण का अध्ययन कराया। इस प्रकार वही यज्ञकुण्ड से उत्पन्न सूत पुराणों का वक्ता हुआ ॥१३५॥ सूत के वीर्य द्वारा वैश्य की स्त्री से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त वक्ता था। लोक में उसकी भट्ट (भाट) संज्ञा हुई। वह सभी के लिए स्तुतिपाठ करता है। इस प्रकार मैंने पृथिवी पर स्थित कुछ जातियों का निर्णय बताया। वर्णसंकर दोष से उत्पन्न होने वाली अभी अनेक जातियाँ शेष हैं ॥१३६-१३७॥ अब मैं जिन जातियों का जिन जातियों से जो सम्बन्ध है उसके विषय में वेदोक्त तत्त्व का वर्णन करता हूँ, जैसा कि पहले ब्रह्मा ने कहा था ॥१३८॥

पिता को तात, जनक, तथा जन्मदाता भी कहते हैं। उसी भाँति माता को अम्बा, माता, जननी, जनयित्री तथा प्रसू (प्रसव करने वाली) कहा जाता है। बाबा को पितामह, पिता का पिता और उनके पिता को प्रपितामह

---

[1] क. ०षु संमतः०। त्वां तं ब्र०।

पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः। अत ऊर्ध्वं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्तिताः ॥१४०॥
मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च। मातामहस्य जनकस्तत्पिता वृद्धपूर्वकः ॥१४१॥
पितामही पितुर्माता तच्छ्वश्रूः प्रपितामही। तच्छ्वश्रूश्च परिज्ञेया सा वृद्धप्रपितामही ॥१४२॥
मातामही मातृमाता मातृतुल्या च पूजिता। प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी ॥१४३॥
वृद्धमातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा। पितृभ्राता पितृव्यश्च मातृभ्राता च मातुलः ॥१४४॥
पितृष्वसा पितुर्मातृष्वसा मातुः स्वसा स्मृता। सूनुश्च तनयः पुत्रो दायादश्चाऽऽत्मजस्तथा ॥१४५॥
धनभाग्वीर्यजश्चैव पुंसि[1] जन्ये च वर्तते। जन्यायां दुहिता कन्या चाऽऽत्मजा परिकीर्तिता ॥१४६॥
पुत्रपत्नी वधूर्ज्ञेया जामाता दुहितुः पतिः। पतिः प्रियश्च भर्ता च स्वामी कान्ते च वर्तते ॥१४७॥
देवरः स्वामिनो भ्राता ननान्दा स्वामिनः स्वसा। श्वशुरः स्वामिनस्तातः श्वश्रूश्च स्वामिनः प्रसूः ॥१४८॥
भार्या जाया प्रिया कान्ता स्त्री च पत्नी प्रकीर्तिता। पत्नीभ्राता श्यालकश्च स्वसा पत्न्याश्च श्यालिका ॥१४९॥
पत्नीमाता तथा श्वश्रूस्तत्पिता श्वशुरः स्मृतः। सगर्भः सोदरो भ्राता सगर्भा भगिनी स्मृता ॥१५०॥
भगिनीजो भागिनेयो भ्रातृजो भ्रातृपुत्रकः। आवुत्तो भगिनीकान्तो भगिनीपतिरेव च ॥१५१॥

कहा जाता है। उनसे ऊपर के लोग ज्ञाति और सगोत्र कहलाते हैं॥१३९-१४०॥ माता के पिता को मातामह तथा उनके पिता को प्रमातामह और उनके पिता को वृद्धप्रमातामह कहा जाता है। उसी भाँति पिता की माता पितामही, उसकी सास प्रपितामही और उसकी सास वृद्धप्रपितामही कही जाती है॥१४१-१४२॥ माता की माता मातामही कही जाती है, जो माता के समान ही पूज्य है। प्रमातामह की स्त्री प्रमातामही और उनके पिता की स्त्री वृद्धप्रमातामही कही गयी है।॥१४३॥ पिता का भाई 'पितृव्य (चाचा) एवं माता का भाई मातुल (मामा) कहा जाता है॥१४४॥ पिता की भगिनी 'पितृष्वसा' (बुआ) माता की भगिनी 'मातृष्वसा' (मौसी) कही जाती है। सूनु, तनय पुत्र, दायाद और आत्मज—ये पुत्र के अर्थ में पर्यायवाची शब्द हैं। अपने से उत्पन्न हुए पुरुष (पुत्र) के अर्थ में धनभाक् और वीर्यज शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। उत्पन्न की गई पुत्री के अर्थ में दुहिता, कन्या तथा आत्मजा शब्द प्रचलित हैं॥१४५-१४६॥ पुत्र की पत्नी को 'वधू' (बहू) और कन्या के पति को जामाता (जमाई) कहते हैं। स्त्री के स्वामी को पति, प्रिय, भर्ता, स्वामी और कान्त, स्वामी के भाई को देवर और स्वामी की भगिनी को 'ननांदा' (ननद) कहते हैं। उसी भाँति स्वामी के पिता को 'श्वशुर' एवं उनकी माता को 'श्वश्रू' (सास) कहते हैं। स्त्री को भार्या, जाया, प्रिया, कान्ता, स्त्री तथा पत्नी, स्त्री के भाई को 'श्यालक' (साला) स्त्री के भगिनी को 'श्यालिका' (साली) तथा पत्नी की माता को 'श्वश्रू' (सास) और उसके पिता को 'श्वशुर' कहते हैं। सगे भाई को सोदर और सगी बहन 'को सोदरा' कहते हैं॥१४७-१५०॥ भगिनी के पुत्र को 'भागिनेय' 'भानजा', भाई के पुत्र को 'भातृज'

---

१ क. ०सि जीवे च०।

श्यालीपतिस्तु भ्राता च श्वशुरैकत्वहेतुना। श्वशुरस्तु पिता ज्ञेयो जन्मदातुः समो मुने॥१५२॥
अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च। विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम्॥१५३॥
अन्नदातुश्च या पत्नी भगिनी गुरुकामिनी। माता च तत्सपत्नी च कन्या पुत्रप्रिया तथा॥१५४॥
मातुर्माता पितुर्माता श्वश्रूःपित्रोः स्वसा तथा। पितृव्यस्त्री मातुलानी मातरश्च चतुर्दश॥१५५॥
पौत्रस्तु पुत्रपुत्रे च प्रपौत्रस्तत्सुतेऽपि च। तत्पुत्राद्याश्च ये वंश्याः कुलजाश्च प्रकीर्तिताः॥१५६॥
कन्यापुत्रश्च दौहित्रस्तत्पुत्राद्याश्च बान्धवाः। भागिनेयसुताद्याश्च पुरुषा बान्धवाः स्मृताः॥१५७॥
भ्रातृपुत्रस्य पुत्राद्यास्ते पुनर्ज्ञातयः स्मृताः। गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पोष्यः परमबान्धवः॥१५८॥
गुरुकन्या च भगिनी पोष्या मातृसमा मुने। पुत्रस्य च गुरुर्भ्राता पोष्यः सुस्निग्धबान्धवः॥१५९॥
पुत्रस्य श्वशुरो भ्राता बन्धुर्वैवाहिकः स्मृतः। कन्यायाः श्वशुरे चैव तत्संबन्धः प्रकीर्तितः॥१६०॥
गुरुश्च कन्यकायाश्च भ्राता सुस्निग्धबान्धवाः। गुरुश्वशुरभ्रातॄणां गुरुतुल्यः प्रकीर्तितः॥१६१॥
बन्धुता येन सार्धं च तन्मित्रं परिकीर्तितम्। मित्रं सुखप्रदं ज्ञेयं दुःखदो रिपुरुच्यते॥१६२॥
बान्धवो दुःखदो दैवान्निःसंबन्धोऽसुखप्रदः। संबन्धास्त्रिविधाः पुंसां विप्रेन्द्र जगतीतले॥१६३॥
विद्याजो योनिजश्चैव प्रीतिजश्च प्रकीर्तितः। मित्रं तु प्रीतिजं ज्ञेयं स संबन्धः सुदुर्लभः॥१६४॥
मित्रमाता मित्रभार्या मातृतुल्या न संशयः। मित्रभ्राता मित्रपिता भ्रातृतातसमौ नृणाम्॥१६५॥

(भतीजा) और भगिनी के पति को आवुत्त, भगिनीकान्त तथा भगिनीपति कहा जाता है। साली का पति (साढ़ू) भी अपना भाई ही है; दोनों के श्वशुर को जन्म देने वाले पिता के समान जानना चाहिए॥१५१-१५२॥ अन्नदाता, भयत्राता, पत्नी का पिता, विद्यादाता, जन्मदाता—ये पाँच मनुष्यों के पिता कहलाते हैं॥१५३॥ अन्नदाता की पत्नी, भगिनी, गुरु की स्त्री, माता, सौतेली माँ, कन्या, पुत्रवधू, नानी, दादी, सास, माता की बहन, पिता की बहन, चाची और मामी—ये चौदह माताएँ हैं॥१५४-१५५॥ पुत्र के पुत्र को पौत्र, उसके पुत्र को प्रपौत्र तथा उसके पुत्र आदि को 'वंशज' और 'कुलज' कहते हैं॥१५६॥ कन्या के पुत्र को दौहित्र और उसके पुत्रादि तथा भानजे के पुत्रादि को 'बान्धव' कहते हैं॥१५७॥ भाई के पुत्र के पुत्र आदि को 'ज्ञाति' कहा जाता है। गुरुपुत्र और भाई परम बन्धु होने के नाते पोषण के योग्य हैं॥१५८॥ मुने! गुरु की कन्या और भगिनी माता के समान पोषण के योग्य हैं। पुत्र के गुरु को भी भाई मानना चाहिए। वह पोष्य तथा सुस्निग्ध बान्धव कहा गया है॥१५९॥ पुत्र के श्वशुर को वैवाहिक सम्बन्ध से भाई समझना चाहिए। कन्या के श्वशुर के साथ भी वही सम्बन्ध होता है॥१६०॥ कन्या का गुरु भी अत्यन्त स्नेही बान्धव है। गुरु और श्वशुर के भाई गुरु के समान होते हैं जिसके साथ 'बन्धुता' (भाईचारे) का सम्बन्ध होता है, उसे मित्र कहा जाता है; क्योंकि सुख देने वाले को 'मित्र' और दुःख देने वाले को शत्रु समझना चाहिए॥१६१-१६२॥ विप्रेन्द्र! दैववश कभी बान्धव भी दुःख देने वाला हो जाता है और जिससे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वह सुखदायक बन जाता है। इस भूमण्डल में मनुष्यों के तीन प्रकार के सम्बन्ध कहे गये हैं—जो विद्याजन्य, योनिजन्य और प्रीतिजन्य होते हैं। उसमें मित्र के साथ प्रीतिजन्य सम्बन्ध होता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है॥१६३-१६४॥ मित्र की माता और मित्र की पत्नी माता के समान होती है, इसमें

चतुर्थं नामसंबन्धमित्याह कमलोद्भवः। जारश्चोपपतिर्बन्धुर्दुष्टसंभोगकर्तरि ॥१६६॥
उपपत्न्यां नवज्ञा च प्रेयसी चित्तहारिणी। स्वामितुल्यश्च जारश्च नवज्ञा गृहिणीसमा ॥१६७॥
संबन्धो देशभेदे च सर्वदेशे विगर्हितः। अवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः ॥१६८॥
दुस्त्यजश्च महद्भिस्तु देशभेदे विधीयते। अकीर्तिजनकः पुंसां योषितां च विशेषतः ॥१६९॥
तेजीयसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे ॥१७०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
जातिसंबन्धनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

शौनक उवाच

द्विजः स भार्यां संत्यज्य किं चकार विशेषतः। अश्विनोर्वा महाभाग किं नाम कस्य वंशजौ ॥१॥

सौतिरुवाच

द्विजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः। तपश्चकार कृष्णस्य लक्षवर्षं हिमालये ॥॥२॥

संशय नहीं। मित्र का भाई और उसका पिता मनुष्यों के लिए भाई और पिता के समान होते हैं॥१६५॥ कमलोत्पन्न ब्रह्मा ने चौथा नाम-सम्बन्ध भी बताया है। दुष्ट संभोग करने वाला जार पुरुष सम्बन्ध में उपपति कहलाता है॥१६६॥ चित्त का हरण करने वाली प्रेमिका उपपत्नी तथा नवज्ञा कहलाती है। जार पति के तुल्य और नवज्ञा पत्नी के तुल्य कही गई है॥१६७॥ यह सम्बन्ध देश विशेष में या सभी देशों में निन्दित माना गया है। इस अवैदिक सम्बन्ध का निर्माण विश्वामित्र ने किया था॥१६८॥ महान् व्यक्तियों के लिए भी दुस्त्यज यह सम्बन्ध देश-विशेष में विहित है। किन्तु यह सम्बन्ध पुरुषों और विशेषकर स्त्रियों के लिए अकीर्तिकर है। फिर भी किसी भी युग में अतिशय तेजस्वी व्यक्तियों के लिए यह सम्बन्ध दोषजनक नहीं भी है॥१६९-१७०॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में जाति-सम्बन्ध-
निर्णय नामक दसवाँ अध्याय समाप्त॥१०॥

अध्याय ११

अश्विनीकुमारों का शापमोक्ष तथा वैष्णव ब्राह्मणों की प्रशंसा

शौनक बोले––महाभाग! उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को त्यागकर आगे क्या किया? और अश्विनीकुमारों से उत्पन्न हुए का क्या नाम है? वे किसके वंशज हैं?

सौति बोले––उस तपस्वी ब्राह्मण का नाम सुतपा था। वे भरद्वाज-कुल में उत्पन्न बहुत बड़े मुनि थे। उन्होंने हिमालय पर्वत पर जाकर एक लाख वर्ष तक भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की। उन महातपस्वी एवं

महातपस्वी तेजस्वी प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। ज्योतिर्ददर्श कृष्णस्य गगने सहसा क्षणम्॥३॥
वरं स वव्रे निर्लिप्तमात्मानं प्रकृतेः परम्। न च मोक्षं ययाचे तं दास्यं भक्तिं च निश्चलाम्॥४॥
बभूवाऽऽकाशवाणीति कुरु दारपरिग्रहम्। पश्चाद्दास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगक्षये द्विज॥५॥
पितॄणां मानसीं कन्यां ददौ तस्मै विधिः स्वयम्। तस्यां कल्याणमित्रश्च बभूव मुनिपुंगवः॥६॥
यस्य स्मरणमात्रेण न भवेत्कुलिशाद्भयम्। न द्रष्टव्यं बन्धुमात्रं नूनं तत्स्मरणाल्लभेत्॥७॥
कल्याणमित्रजननीं परित्यज्य महामुनिः। शशाप सूर्यपुत्रं च यज्ञभागविवर्जितो भव॥८॥
ससोदरश्च वा पूज्यो भवेति च सुराधम। व्याधिग्रस्तो जडाङ्गश्च भूयास्त्वेऽकीर्तिमानिति॥९॥
इत्युक्त्वा सुतपा गेहं प्रतस्थे सूनुना सह। अश्विभ्यां सहितः सूर्यः प्रययौ च तदन्तिकम्॥१०॥
पुत्राभ्यां व्याधियुक्ताभ्यां सूर्यस्त्रिजगतां पतिः। मुनीन्द्रं वै सुतपसं स तुष्टाव च शौनक॥११॥

सूर्य उवाच

क्षमस्व भगवन्विप्र विष्णुरूप युगे युगे। मम पुत्रापराधं च भारद्वाज मुनीश्वर॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सुराः सर्वे च संततम्। भुञ्जते विप्रदत्तं तु फलपुष्पजलादिकम्॥१३॥
ब्राह्मणा वाहिता देवाः शश्वद्विश्वेषु पूजिताः। न च विप्रात्परो देवो विप्ररूपी स्वयं हरिः॥१४॥

तेजस्वी ने, जो अपने ब्रह्मतेज से उदीप्त हो रहे थे, एक दिन सहसा आकाश में क्षण भर के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की ज्योति का दर्शन किया और प्रकृति से परे सर्वथा निर्लिप्त रहने एवं निश्चल दास्य-भक्ति का वरदान मांगा। उन्होंने मोक्ष की याचना नहीं की॥१-४॥ तब आकाशवाणी हुई—ब्रह्मन्! विवाह करो, अनन्तर भोग सम्बन्धी प्रारब्ध के क्षीण हो जाने पर मैं तुम्हें अपनी दास्य भक्ति प्रदान करूँगा॥५॥ पश्चात् ब्रह्मा ने स्वयं उन्हें पितरों की मानसी नामक कन्या प्रदान की। मुनिपुंगव! उनके संयोग से उस स्त्री में कल्याणमित्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥६॥ जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य को अपने ऊपर वज्र या बिजली गिरने का भय नहीं होता। कल्याणमित्र के स्मरण से निश्चय ही उन बन्धुजनों को भी प्राप्ति हो जाती है, जिनका दर्शन असंभव होता है॥७॥ अनन्तर महामुनि सुतपा ने कल्याणमित्र की माता को त्यागकर सूर्यपुत्र (अश्विनीकुमार) को भी शाप दिया कि 'तू अपने भाई के साथ यज्ञभाग से वंचित और अपूज्य हो जा। तेरा अंग रोगग्रस्त और जड़ हो जाय। तू कलंकयुक्त हो जाय' ॥८-९॥ इतना कह कर सुतपा बालक को लेकर अपने घर चले गये और सूर्य भी अपने अश्विनीकुमारों को लेकर उन ऋषि के निकट पहुँचे॥१०॥ शौनक! तीनों लोकों के पति सूर्य ने अपने रोगी पुत्रों समेत मुनिश्रेष्ठ सुतपा का दर्शन करके उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया॥११॥

सूर्य बोले—विप्र! क्षमा करें। भगवन्! आप प्रत्येक युग में विष्णुस्वरूप हैं। हे भारद्वाज मुनीश्वर! मेरे पुत्रों का अपराध क्षमा कीजिए॥१२॥ ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि सभी देवगण सदैव ब्राह्मण के दिये हुए फल, पुष्प एवं जल आदि का उपभोग करते हैं। लोकों में ब्राह्मण द्वारा आवाहित हुए देवगण वहाँ निरन्तर पूजित होते हैं। विप्र से बढ़कर कोई अन्य देवगण नहीं हैं; क्योंकि वे ब्राह्मण के रूप में स्वयं भगवान् हैं॥१३-१४॥

ब्राह्मणे परितुष्टे च तुष्टो नारायणः स्वयम्। नारायणे च संतुष्टे संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥१५॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न च कृष्णात्परः सुरः । न शंकराद्वैष्णवश्च न सहिष्णुर्धरापरा ॥१६॥
न च सत्यात्परो धर्मो न साध्वी पार्वतीपरा। न दैवाद्बलवान्कश्चिन्न च पुत्रात्परः प्रियः ॥१७॥
न च व्याधिसमः शत्रुर्न च पूज्यो गुरोः परः। नास्ति मातृसमो बन्धुर्न च मित्रं पितुः परम् ॥१८॥
एकादशीव्रतान्नान्यत्तपो नानशनात्परम् । परं सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नं परं ततः ॥१९॥
[1]सर्ववर्णात्परो विप्रो नास्ति विप्रसमो गुरुः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञ इत्याह कमलोद्भवः ॥२०॥
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो ननाम तम्। नीरुजौ चापि तत्पुत्रौ चकार तपसः फलात् ॥२१॥
पश्चाच्च तव पुत्रौ च यज्ञभाजौ भविष्यतः। इत्युक्त्वा तं च सुतपाः प्रणम्याहस्करं मुनिः ॥२२॥
जगाम गङ्गां संत्रस्तो हरिसेवनतत्परः । पुत्राभ्यां सहितः सूर्यो जगाम निजमन्दिरम् ॥२३॥
बभूवतुस्तौ पूज्यौ च यज्ञभाजौ द्विजाशिषा[2]। एतत्सूर्यकृतं विप्र स्तोत्रं यो मानवः पठेत्
विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत्। ॥२४॥
ब्राह्मणेभ्यो नम इति प्रातरुत्थाय यः पठेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥२५॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे। सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥२६॥

ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर स्वयं नारायण सन्तुष्ट होते हैं और नारायण के सन्तुष्ट होने पर समस्त देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥१५॥ गंगा से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है, कृष्ण से बढ़कर उत्तम देवता नहीं; शंकर से बढ़कर वैष्णव नहीं और पृथिवी से बढ़कर कोई सहनशील नहीं है ॥१६॥ सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं, पार्वती से बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं, दैव से बढ़कर कोई बलवान् नहीं और पुत्र से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है ॥१७॥ रोग के समान शत्रु, गुरु से बढ़कर पूज्य, माता के समान बन्धु, और पिता से बढ़कर दूसरा कोई मित्र नहीं है ॥१८॥ व्रतों में एकादशी उत्तम है और उपवास से बढ़कर अन्य कोई तप नहीं है। सब धनों में रत्न और रत्नों में विद्यारत्न उत्तम है ॥१९॥ सभी वर्णों में ब्राह्मण उत्तम है विप्र के समान कोई गुरु नहीं है। यह बात वेद-वेदांग के तत्त्व-ज्ञाता कमलोत्पन्न ब्रह्मा ने कही है ॥२०॥ सूर्य की बातें सुनकर भारद्वाज सुतपा ने उन्हें नमस्कार किया और तप फल द्वारा उनके दोनों पुत्रों को नीरोग कर दिया ॥२१॥ पश्चात् सुतपा मुनि ने यह भी कहा कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र यज्ञ-भाग के अधिकारी भी होंगे। उपरान्त सूर्य को नमस्कार करके तपस्या के क्षीण होने के भय से भयभीत हो श्रीहरि की सेवा में मन लगाकर गंगा-तट को प्रस्थान किया। तत्पश्चात् सूर्य दोनों सुपुत्र को साथ लिए अपने धाम को चले गये। ब्राह्मण के आशीर्वाद से वे दोनों उसी दिन से यज्ञ में पूज्य और उसके भाग के अधिकारी हो गये। विप्र! जो मनुष्य सूर्यरचित इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह विप्रचरण के प्रसाद से सर्वत्र विजयी होता है ॥२२-२४॥ प्रातः-काल उठकर जो 'ब्राह्मणेभ्योनमः' ऐसा पाठ करता है, वह समस्त तीर्थों में स्नान करने और समस्त यज्ञों में दीक्षा लेने का फल प्राप्त करता है ॥२५॥ पृथिवी-मण्डल में जितने तीर्थ हैं, वे सागर में भी हैं और सागर में जितने तीर्थ हैं, वे ब्राह्मण के चरणों में भी वर्तमान रहते हैं। इसलिए जो ब्राह्मण का चरणोदक पान करता है, उसके

---

१ ख. ०सर्वाश्रमैः प०। २ क. ०जाज्ञया०। ए।

विप्रपादोदकं पीत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम्॥२७॥
विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पिबेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥२८॥
महारोगी यदि पिबेद्विप्रपादोदकं द्विज। मुच्यते सर्वरोगाच्च मासमेकं तु भक्तितः॥२९॥
अविद्यो वा सविद्यो वा संध्यापूतो हि यो द्विजः। स एव विष्णुसदृशो न हरौ विमुखो यदि॥३०॥
घ्नन्तं विप्रं शपन्तं वा न हन्यान्न च तं शपेत्। गोभ्यः शतगुणं पूज्यो हरिभक्तश्च स स्मृतः॥३१॥
पादोदकं च नैवेद्यं भुङ्क्ते विप्रस्य यो द्विजः। नित्यं नैवेद्यभोजी च राजसूयफलं लभेत्॥३२॥
एकादश्यां न भुङ्क्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत्। तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेद् ध्रुवम्॥३३॥
यो भुङ्क्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यभोजनम्। कृष्णदेवस्य पूतोऽसौ जीवन्मुक्तो महीतले॥३४॥
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। द्विजानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः॥३५॥
ब्रह्मा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः। ब्राह्मणस्तत्कुले जातो विमुखश्च हरौ कथम्॥३६॥
पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्च वा। दोषेण विमुखाः कृष्णे विप्रा जीवन्मृताश्च ते॥३७॥
स किंगुरुः स किंतातः स किंपुत्रः स किंसखा। स किंराजा स किंबन्धुर्न दद्याद्यो हरौ मतिम्॥३८॥
अवैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः। सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥३९॥
संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुखो द्विजः। स एव ब्राह्मणाभासो विषहीनो यथोरगः॥४०॥

पितर पृथिवी के स्थिति-काल तक पुष्करपात्रों (कमल के पत्तों?) में जल पीते हैं॥२६-२७॥ जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मण का पुण्य चरणोदक पान करता है उसे समस्त तीर्थों में स्नान और सभी यज्ञों की दीक्षा प्राप्त करने का फल मिलता है॥२८॥ द्विज! यदि महारोगी भी एक मास तक भक्तिपूर्वक ब्राह्मण का चरणोदक पान करे तो वह समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है॥२९॥ विद्वान् हो चाहे विद्याहीन, जो ब्राह्मण प्रतिदिन संध्यावंदन करके पवित्र होता है तथा भगवद्भक्ति करता है, वह विष्णु के समान है। मारते हुए या शाप देते हुए ब्राह्मण को न मारना चाहिए और न शाप ही देना चाहिए। हरिभक्त ब्राह्मण गौओं से भी सौ गुना अधिक पूज्य है॥३०-३१॥ द्विज! ब्राह्मण का चरणोदक और नैवेद्य का नित्य भक्षण करने वाला पुरुष राजसूय नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥३२॥ जो एकादशी के दिन भोजन नहीं करता है और नित्य भगवान् कृष्ण की अर्चना करता है उसके चरणोदक को प्राप्त करने पर स्थल भी निश्चित रूप से तीर्थ बन जाता है॥३३॥ जो नित्य भगवान् कृष्ण का उच्छिष्ट या नैवेद्य भोजन करता है वह पवित्रात्मा भूतल पर जीवन्मुक्त होकर रहता है॥३४॥ कमलोद्भव ब्रह्मा ने यह भी बताया है कि कुलीन ब्राह्मणों का भी अन्न, जो भगवान् कृष्ण को अर्पित नहीं किया गया है, विष्ठा के समान है और उनको अनिवेदित दुग्ध मूत्र के समान है॥३५॥ ब्रह्मा और ब्रह्मा के पुत्र सभी विष्णु के भक्त हैं और उन्हीं के कुल में ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई है तो वह भला भगवान् से विमुख कैसे हो सकता है?॥३६॥ माता-पिता अथवा मातामह आदि या गुरु के संसर्ग के दोष से भगवान् कृष्ण के विमुख रहने वाले ब्राह्मण जीवित होते हुए भी मृतक के समान हैं॥३७॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख रहने की बुद्धि नहीं प्रदान करता है, वह गुरु, पिता, पुत्र, सखा, राजा या बन्धु आदि कोई भी हो, निन्दा का पात्र है॥३८॥ विप्र! अवैष्णव ब्राह्मण से वैष्णव चाण्डाल उत्तम होता है। इसलिए वैष्णव चांडाल परिवार समेत मुक्त हो जाता है और अवैष्णव ब्राह्मण नरकगामी होता है। जो ब्राह्मण संध्या से हीन, नित्य अपवित्र और भगवान् कृष्ण से विमुख रहता है, वह विषहीन साँप की भाँति नाममात्र का ब्राह्मण है॥३९-४०॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति। तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं वदेद्विधिः॥४१॥
पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्धं हरेः पदम्। प्रयाति वैष्णवः पुंसामात्मनः कुलकोटिभिः॥४२॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राश्चतस्रो जातयो यथा। स्वतन्त्रा जातिरेका च [1]विश्वस्मिन्वैष्णवाभिधा॥४३॥
ध्यायन्ति वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपदपङ्कजम्। ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ॥४४॥
सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च। तथाऽपि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेद्भक्तसंनिधौ॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

शौनक उवाच

ऋषिवंशप्रसंगेन बभूवुर्विविधाः कथाः। उपालम्भेन प्रस्तावात्कौतुकेन श्रुता मया॥१॥
प्रजा वा ससृजुः के वा ऊर्ध्वरेताश्च कश्चन। पित्रा सह विरोधेन नारदः किं चकार सः॥२॥

गुरु के मुख से निकला हुआ विष्णु-मंत्र जिसके कान में प्रविष्ट होता है, उस वैष्णव को ब्रह्मा ने महापवित्र एवं जीवन्मुक्त कहा है। वह वैष्णव मातामह (नाना) आदि की सैकड़ों पीढ़ियों और अपने कुल की करोड़ों पीढ़ियों को साथ लेकर भगवान् के लोक को जाता है॥४१-४२॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियाँ हैं किन्तु सम्पूर्ण विश्व में वैष्णव नाम की एक जाति स्वतन्त्र है॥४३॥

वैष्णव लोग निरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण उनके समीप रहकर निरन्तर उन लोगों का ध्यान करते हैं॥४४॥ भक्तों के रक्षार्थ सुदर्शनचक्र को नियुक्त करके भी भगवान् निश्चिन्त नहीं रहते; प्रत्युत भक्तों के समीप जाकर रहते हैं॥४५॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में वैष्णव ब्राह्मणों की प्रशंसा नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥११॥

अध्याय १२

नारद का वृत्तान्त

शौनक बोले—ऋषियों के वंश-वर्णन के प्रसंग में बहुत-सी कथाएँ हुईं। उनको मैं उपालंभ के द्वारा, प्रस्ताव से तथा कौतुक से सुन चुका। (अब यह बताने की कृपा करें कि) ब्रह्मा के पुत्रों में किन लोगों ने सृष्टि करना आरम्भ किया और कौन उर्ध्वरेता (महर्षि) हुए? पिता (ब्रह्मा) से विरोध करके नारद ने क्या किया?

---

१ क. विश्वेषु।

पितुः शापेन पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः। पितुर्वा पुत्रशापेन सौते तत्कथ्यतां शुभम्॥३॥

सौतिरुवाच

हंसो यतिश्चारणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा। अपान्तरतमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनक॥४॥
एतैर्विनाऽन्ये बहवो ब्रह्मपुत्राश्च संततम्। सांसारिकाः प्रजावन्तो गुर्वाज्ञापरिपालकाः॥५॥
अपूज्यः पुत्रशापेन स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः। तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं नोपासन्ते विपश्चितः॥६॥
नारदो गुरुशापेन गन्धर्वश्च बभूव सः। कथयामि सुविस्तीर्णं तद्वृत्तान्तं निशामय॥७॥
गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां वरो महान्। परमैश्वर्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा॥८॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना। तपश्चकार शंभोश्च कृपणो दीनमानसः॥९॥
शिवस्य कवचं स्तोत्रं मन्त्रं च द्वादशाक्षरम्। ददौ गन्धर्वराजाय वसिष्ठश्च कृपानिधिः॥१०॥
जजाप परमं मन्त्रं दिव्यं वर्षशतं मुने। पुष्करे स निराहारः पुत्रदुःखेन तापितः॥११॥
विरामे शतवर्षस्य ददर्श पुरतः शिवम्। भासयन्तं दश दिशो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥१२॥
महत्तेजः स्वरूपं च भगवन्तं सनातनम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्॥१३॥
तपोरूपं तपोबीजं तपस्याफलदं फलम्। शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसंपदाम्॥१४॥

विरोध वश पिता के शाप से पुत्र का क्या हुआ? और पुत्र के शाप से पिता का क्या हुआ? सूतपुत्र! यह पवित्र वृत्तान्त बताइए॥१-३॥

सौति बोले—शौनक! हंस, यति, अरणि, वोढु, पञ्चशिख, अपान्तरतमा और सनकादि चारों पुत्रों के अतिरिक्त अन्य सभी ब्रह्मा के पुत्रों ने संसार-वृद्धि के लिए प्रजाओं की सृष्टि की। वे सदैव गुरु ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करते रहे॥४-५॥ पुत्र (नारद) के शाप द्वारा स्वयं प्रजापति ब्रह्मा अपूज्य हुए। इसीलिए विद्वान् लोग ब्रह्मा के मंत्र की उपासना नहीं करते॥६॥ नारद भी ब्रह्मा के शाप से गन्धर्व हुए। उनके विस्तृत वृत्तान्त को मैं कह रहा हूँ, सुनो॥७॥

उन दिनों जो गन्धर्वराज थे वे सब गन्धर्वों में श्रेष्ठ और महान् थे, उच्च कोटि के ऐश्वर्य से सम्पन्न थे, परन्तु किसी कर्म वश पुत्रहीन थे। कृपण एवं दीन चित्त वाले उस गन्धर्वराज ने गुरु की आज्ञा से पुष्कर तीर्थ में परम समाधिस्थ होकर (या एकाग्रतापूर्वक) भगवान् शंकर की आराधना करना आरम्भ किया॥८-९॥ कृपानिधान वशिष्ठ ने शिव का कवच, स्तोत्र और द्वादशाक्षर मन्त्र गन्धर्वराज को प्रदान किया। मुने! पुत्र-दुःख से सन्तप्त गन्धर्वराज ने निराहार रहकर दिव्य सौ वर्षों तक पुष्कर में उस परम मन्त्र का जप किया॥१०-११॥ तब सौ वर्षों के अन्त में उन्होंने अपने सामने स्थित शिव का प्रत्यक्ष दर्शन किया जो दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए अपने तेज से प्रदीप्त हो रहे हैं॥१२॥ उनके प्रसन्न मुख पर मन्द हास्य की छटा छा रही थी। भक्तों पर अनुग्रह करने वाले वे भगवान् तपोरूप हैं, तपस्या के बीज हैं, तपस्या के फल देने वाले हैं और स्वयं ही तपस्या के फल हैं। वे शरण में आये हुए भक्तों को समस्त सम्पत्ति प्रदान कर देते हैं॥१३-१४॥ उस समय वे त्रिशूल, पट्टिश, धारण किये

त्रिशूलपट्टिशधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्। शुद्धस्फटिकसंकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्॥१५॥
तप्तस्वर्णप्रभाजुष्टजटाजालधरं वरम्। नीलकण्ठं च सर्वज्ञं नागयज्ञोपवीतकम्॥१६॥
संहर्तारं च सर्वेषां कालं मृत्युंजयं परम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डकोटिसंकाशमीश्वरम्॥१७॥
तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम्। दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वो दण्डवद्भुवि॥१८॥
वसिष्ठदत्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम्। वरं वृणुष्वेति शिवस्तमुवाच कृपानिधिः॥
स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम् ॥१९॥
गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा चाहसीच्चन्द्रशेखरः। उवाच दीनं दीनेशो दीनबन्धुः सनातनः॥२०॥

महादेव उवाच

कृतार्थस्त्वं वरादेकादन्यच्चर्वितचर्वणम्। गन्धर्वराज वृणुषे को वा तृप्तोऽतिमङ्गले॥२१॥
यस्य भक्तिर्हरौ वत्स सुदृढा सर्वमङ्गला। स समर्थः सर्वविश्वं पातुं कर्तुं च लीलया॥२२॥
आत्मनः कुलकोटिं च शतं मातामहस्य च। पुरुषाणां समुद्धृत्य गोलोकं याति निश्चितम्॥२३॥
त्रिविधानि च पापानि कोटिजन्मार्जितानि च। निहत्य पुण्यभोगं च हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम्॥२४॥
तावत्पत्नी सुतस्तावत्तावदैश्वर्यमीप्सितम्। सुखं दुःखं नृणां तावद्यावत्कृष्णे न मानसम्॥२५॥
कृष्णे मनसि संजाते भक्तिखड्गो दुरत्ययः। नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोत्यहो॥२६॥

हुए, बैल पर विराजमान, नग्न, शुद्ध स्फटिक के समान निर्मलकान्ति, त्रिनेत्र, मस्तक पर चन्द्रमा तथा तपाये हुए सुवर्ण की प्रभा से भूषित जटा-जूट को धारण किये हुए थे। कंठ में नील चिह्न और कंधे पर नाग का यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था। इस प्रकार सर्वज्ञ, सर्वसंहारक, कालरूप, मृत्युञ्जय, ग्रीष्मऋतु की दोपहरी के करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी, शान्तस्वरूप और तत्त्वज्ञान, मोक्ष तथा हरिभक्ति प्रदान करने वाले शिव को देखकर उस गन्धर्व ने सहसा दंड की भाँति पृथिवी पर पड़कर प्रणाम किया और वशिष्ठ के दिये हुए स्तोत्र द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति की। अनन्तर कृपानिधान शिव ने उससे कहा—'वरदान मांगो।' उन्होंने भगवान् की भक्ति समेत परम वैष्णव पुत्र की याचना की॥१५-१९॥ दीनों के ईश, दीनबन्धु एवं सनातन भगवान् चन्द्रशेखर ने उस गन्धर्व की बात सुनकर हँसते हुए उस दीन से कहा॥२०॥

श्री महादेव बोले—गन्धर्वराज! तुम तो एक ही वरदान से कृतार्थ हो गये, अतः दूसरा वरदान तुम्हारे लिए चबाये हुए को चबाना मात्र है। अथवा जो तुमने दूसरा वरदान माँगा, वह भी ठीक है। भला कल्याण से कौन तृप्त होता है? (अर्थात् जिसको जितना कल्याण मिलता है, वह उससे अधिकाधिक कल्याण चाहता है)॥२१॥ वत्स! जिसकी श्रीहरि में सर्वमांगलिक भक्ति अत्यन्त दृढ़ है वह समस्त विश्व की रक्षा एवं सर्जन खेल-खेल में ही करने में समर्थ है॥२२॥ वह अपनी करोड़ पीढ़ियों और मातामह के सौ कुलों का उद्धार करके निश्चित रूप से गोलोक को जाता है॥२३॥ वह कोटि जन्मों के किये हुए त्रिविध (कायिक, वाचिक और मानसिक) पापों को नष्ट करके पुण्य भोग समेत भगवान् की सेवा का सौभाग्य पाता है॥२४॥ मनुष्यों को पत्नी, पुत्र और ऐश्वर्य की प्राप्ति तभी तक अभीष्ट होती है और तभी तक सुख-दुःख होते हैं जब तक उसका मन भगवान् कृष्ण में नहीं लगता है॥२५॥ क्योंकि भगवान् कृष्ण में मन लगाने पर भक्तिरूपी खड्ग मनुष्यों के कर्म रूपी वृक्षों का मूलोच्छेद कर डालता

भवेद्येषां सुकृतिनां पुत्राः परमवैष्णवाः। कुलकोटिं च तेषां त उद्धरन्त्येव लीलया॥२७॥
चरितार्थः पुमानेकद्वारमिच्छुर्वरादहो। किं वरेण द्वितीयेन पुंसां तृप्तिर्न मङ्गले॥२८॥
धनं संचितमस्माकं वैष्णवानां सुदुर्लभम्। श्रीकृष्णे भक्तिदास्यं च न वयं दातुमुत्सुकाः॥२९॥
वरयान्यं वरं वत्स यत्ते मनसि वाञ्छितम्। इन्द्रत्वममरत्वं वा ब्रह्मत्वं लभ दुर्लभम्॥३०॥
सर्वसिद्धिं महायोगं ज्ञानं मृत्युंजयादिकं। सुखेन सर्वं दास्यामि हरिदास्यं त्यज ध्रुवम्॥३१॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। उवाच दीनो दीनेशं दातारं सर्वसंपदाम्॥३२॥

गन्धर्व उवाच

यत्पक्ष्मचालनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्। तद्ब्रह्मत्वं स्वप्नतुल्यं कृष्णभक्तो न चेच्छति॥३३॥
इन्द्रत्वममरत्वं वा सिद्धयोगादिकं शिव। ज्ञानं मृत्युंजयाद्यं वा नहि भक्तस्य वाञ्छितम्॥३४॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यं श्रीहरेरपि। तत्र निर्वाणमोक्षं च नहि वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥३५॥
शश्वत्तत्र दृढा भक्तिर्हरिदास्यं सुदुर्लभम्। स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं वरं वरम्॥३६॥
तद्दास्यं वैष्णवसुतं देहि कल्पतरो वरम्। त्वां प्राप्य लभते तुष्टं वरं सर्ववरोऽवरः॥३७॥

है; यह आश्चर्य की बात है। जिन पुण्यकर्मियों के अत्यन्त वैष्णव पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनके वे पुत्र लीलापूर्वक कुल की बहुसंख्यक पीढ़ियों का उद्धार कर देते हैं॥२६-२७॥ यद्यपि मनुष्य एक ही वरदान से कृतार्थ हो जाता है, फिर भी वह दूसरा वरदान चाहता है, यह आश्चर्य की बात है। दूसरे वरदान की क्या आवश्यकता है? लोगों को मंगल की प्राप्ति से तृप्ति नहीं होती है॥२८॥ हमारे पास वैष्णवों के लिए परम दुर्लभ धन संचित है। भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति और दास्य हम लोग दूसरों को देने के लिए उत्सुक नहीं होते। कोई अन्य अभीष्ट वरदान माँगो। मैं इन्द्रत्व, अमरत्व और दुर्लभ ब्रह्मत्व भी दे सकता हूँ तथा समस्त सिद्धियाँ, महायोग एवं मृत्यु को जीतने आदि का ज्ञान भी सहर्ष प्रदान करने को तैयार हूँ; किन्तु श्रीहरि का दासत्व माँगना छोड़ दो॥२९-३१॥ शंकर की ऐसी बातें सुन कर उस दीन के कण्ठ, ओठ और तालु सब सूख गये। उसने समस्त सम्पत्तियों के प्रदाता एवं दीनानाथ से पुनः कहा।

गन्धर्व बोले—जिसका ब्रह्मा की दृष्टि पड़ते ही पतन हो जाता है, वह ब्रह्मपद स्वप्न के समान मिथ्या एवं क्षणभंगुर है। उसे कोई कृष्ण-भक्त नहीं चाहता है॥३२-३३॥ हे शिव! इन्द्रत्व, अमरत्व, सिद्धि अथवा योगादिक और मृत्युञ्जयादिक ज्ञान भी भक्त को प्रिय नहीं होता है। यहाँ तक कि भगवान् के सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य नामक चार प्रकार के मोक्ष और निर्वाणमोक्ष को भी वैष्णवगण नहीं चाहते हैं। भगवान् की निरन्तर सुदृढ़ रहने वाली भक्ति और उनके अत्यन्त दुर्लभ दास्य को ही भक्तगण सोते-जागते समय चाहते हैं। अतः हमारे लिए यही वरदान उत्तम है। ॥३४-३६॥ हे कल्पवृक्ष! इसलिए मुझे हरिदास्य और विष्णुभक्त पुत्र प्रदान करने की कृपा करें क्योंकि आपको सन्तुष्ट पाकर जो कोई दूसरा वर माँगता है, वह बर्बर है। ॥३७॥ शम्भो! यदि आप

न दास्यसीदं चेच्छंभो वरं दुष्कृतिनं च माम्। कृत्वा हि स्वशिरश्छेदं प्रदास्यामि हुताशने ॥३८॥
गन्धर्ववचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः। भक्तं दीनं च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ॥३९॥

शंकर उवाच

हरिभक्तिं हरेर्दास्यं पुत्रं परमवैष्णवम्। चिरायुषं च गुणिनं शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ॥४०॥
ज्ञानिनं सुन्दरवरं गुरुभक्तं जितेन्द्रियम्। गन्धर्वराजप्रवरं वरेमं लभ मा शुचः ॥४१॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्माज्जगाम स्वालयं मुने। गन्धर्वराजः संतुष्ट आजगाम स्वमन्दिरम् ॥४२॥
प्रफुल्लमानसाः सर्वे मानवा[1] सिद्धकर्मणः। नारदस्तस्य भार्यायां लेभे जन्म च भारते ॥४३॥
सुषाव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादने। गुरुर्वसिष्ठो भगवान्नाम चक्रे यथोचितम् ॥४४॥
बालकस्य च तत्रैव[2] मङ्गलं मङ्गले दिने। उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च बर्हणः पुमान् ॥
पूज्यानामधिको बालस्तेनोपबर्हणाभिधः ॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

मुझ पापी को यह वरदान नहीं देंगे तो मैं अपना सिर काट कर अग्नि में होम दूंगा ॥३८॥ अनन्तर भक्तों के ईश और उन पर कृपा रखने वाले कृपानिधान भगवान् शंकर ने गन्धर्व की बातें सुनकर उससे कहा ॥३९॥

श्रीशंकर बोले—भगवान् की भक्ति, भगवान् का दास्य और परमवैष्णव पुत्र की प्राप्ति—इस श्रेष्ठ वर को उपलब्ध करो, खिन्न न होओ। तुम्हारा पुत्र वैष्णव होने के साथ ही दीर्घायु, सद्गुणशाली, नित्य सुस्थिर यौवन से सम्पन्न, ज्ञानी, परम सुन्दर, गुरुभक्त तथा जितेन्द्रिय होगा ॥४०-४१॥ मुने! इतना कहकर शंकर जी अपने धाम को चले गये और गन्धर्वराज भी सन्तुष्ट होकर अपने घर को लौटे ॥४२॥ अपने कार्य में सफलता प्राप्त होने पर सभी मानवों के मानस-कमल खिल उठते हैं। उस गन्धर्वराज की पत्नी से नारद जी ने भारतवर्ष में जन्म ग्रहण किया ॥४३॥ गन्धमादन पर्वत पर गन्धर्वराज की वृद्धा पत्नी ने पुत्ररत्न उत्पन्न किया और गुरुदेव भगवान् वशिष्ठ ने उस पुत्र का यथोचित नामकरण संस्कार किया ॥४४॥ उपशब्द का अर्थ अधिक है और पुंलिंग बर्हण का अर्थ पूज्य है। यह बालक पूज्य पुरुषों में सबसे अधिक है। इसलिए इसका नाम 'उपबर्हण' होगा ऐसा वशिष्ठ जी ने कहा ॥४५॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारदजन्मकथन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

---

१ क. ०वाः सर्वकामिनः। ना०। २ ख. तस्यैव।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

पुत्रोत्सवे च रत्नानि धनानि विविधानि च। गन्धर्वराजः प्रददौ ब्राह्मणेभ्यो मुदाऽन्वितः॥१॥
उपबर्हणस्तु कालेन हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। वसिष्ठेन तु संप्राप्य स चक्रे दुष्करं तपः॥२॥
एकदा गण्डकीतीरे तं च संप्राप्तयौवनम्। गन्धर्वपत्न्यो ददृशुर्मूर्च्छामापुश्च तत्क्षणम्॥३॥
ताश्च तीव्रं तपः कृत्वा प्राणान्संत्यज्य योगतः। पञ्चाशत्ता बभूवुश्च कन्याश्चित्ररथस्य च॥४॥
उपबर्हणगन्धर्वं ताश्च तं वव्रिरे पतिम्। मुदा माला ददुस्तस्मै कामुक्यः पितुराज्ञया॥५॥
गृहीत्वा ताश्च गन्धर्वो युवा सुस्थिरयौवनः। दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च रेमे रहसि कामुकः॥६॥
ततोऽपि सुचिरं राज्यं कृत्वा ताभिः सहानिशम्। जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगाथां जगौ मुने॥७॥
दृष्ट्वा स रम्भारम्भोरुं नर्तने कठिनं स्तनम्। बभूव स्खलनं तस्य गन्धर्वस्य महात्मनः॥८॥
व्रतं तत्याज संगीतं मूर्च्छां प्राप सभातले। उच्चैः प्रजहसुर्देवा ब्रह्मा कोपाच्छशाप तम्॥९॥
व्रज त्वं शूद्रयोनिं च गान्धर्वीं तनुमुत्सृज। काले वैष्णवसंसर्गान्मत्पुत्रस्त्वं भविष्यसि॥१०॥

अध्याय १३

ब्रह्मा के शाप से उपबर्हण का शरीर-त्याग, मालावती का विलाप आदि

सौति बोले—गन्धर्वराज ने उस पुत्रोत्सव के उपलक्ष में अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को अनेक भाँति के रत्न, धन समर्पित किये॥१॥ समयानुसार बड़े होने पर उपबर्हण ने गुरु वशिष्ठ के द्वारा अत्यन्त दुर्लभ भगवान् का मन्त्र प्राप्त कर अति कठिन तप करना आरम्भ किया॥२॥ एक बार गण्डकी नदी के तीर पर युवावस्था प्राप्त उस गन्धर्व को गन्धर्व की पत्नियों ने देखा। देखते ही वे उसी क्षण मूर्च्छित हो गईं॥३॥ अनन्तर उन पचास स्त्रियों ने घोर तप करके योग मार्ग द्वारा अपने प्राणों को त्याग किया और चित्ररथ (गन्धर्व) की कन्या होकर पुनः जन्म ग्रहण किया॥४॥ उपरान्त उन कन्याओं ने उसी उपबर्हण नामक गन्धर्व को अपना पति बनाया। उन्होंने अपने पिता की आज्ञा से गन्धर्व को माला पहनाई॥५॥ वह कामुक गन्धर्व भी उन्हें अपनाकर एकान्त स्थान में निवास करते हुए दिव्य तीन लाख वर्षों तक चिरस्थायी यौवन का आनन्द लूटता रहा॥६॥ मुने! अनन्तर राज्य-सिंहासन पर सुखासीन होकर उन ललनाओं के साथ राज्य का उपभोग करते हुए एक दिन ब्रह्मा के यहाँ जाकर भगवान् के यशोगान में सम्मिलित हुआ। नृत्य के समय नाचती हुई रम्भा के कदली-स्तम्भ के समान ऊरु और कठोर स्तन को देखते ही उस महात्मा गन्धर्व का वीर्यपात हो गया॥७-८॥ इससे उसका संगीत तो छूट ही गया, वह मूर्च्छित भी हो गया। देवता लोग ठहाका मारकर हँसने लगे। तब ब्रह्मा ने उसे शाप देते हुए कहा—'इस गन्धर्व-शरीर को त्याग कर तुम शूद्र योनि में जन्म ग्रहण करो। फिर समयानुसार वैष्णवों का संसर्ग प्राप्त कर तुम पुनः मेरे पुत्र के रूप में प्रतिष्ठित हो जाओगे॥९-१०॥ पुत्र! बिना विपत्ति को सहन किये पुरुषों की महिमा प्रकट नहीं

विना विपत्तेर्महिमा पुंसां नैव भवेत्सुत । सुखं दुःखं च सर्वेषां क्रमेण प्रभवेदिति ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा स विधिरगच्छत्पुष्कराद्गृहम् । उपबर्हणगन्धर्वः स जहौ तां तनुं तदा ॥१२॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धमाज्ञाख्यं चेति भित्त्वा षट्चक्रमेव च ॥१३॥
इडां सुषुम्नां मेधां च पिङ्गलां [1]प्राणधारिणीम् । सर्वज्ञानप्रदां चैव मनःसंयमिनीं तथा ॥१४॥
विशुद्धां च निरुद्धां च वायुसंचारिणीं तथा । तेजः शुष्ककरीं चैव बलपुष्टिकरीं तथा ॥१५॥
बुद्धिसंचारिणीं चैव ज्ञानजृम्भणकारिणीम् । सर्वप्राणहरा चैव पुनर्जीवनकारिणीम् ॥१६॥
एताः षोडशधा नाडीर्भित्त्वा वै हंसमेव च । मनसा सहितं ब्रह्मरन्ध्रमानीय योगतः ॥१७॥
स्थित्वा मुहूर्तमात्मानमात्मन्येव युयोज ह । जातिस्मरश्च योगीन्द्रः संप्राप ब्रह्म शौनक ॥१८॥
वीणां त्रितन्त्रीं दुष्प्राप्यां वामस्कन्धे निधाय च । शुद्धस्फटिकमालां च विधृत्वा दक्षिणे करे ॥१९॥
संजल्पन्परमं ब्रह्म वेदसारं परात्परम् । परं निस्तारबीजं च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥२०॥
प्राच्यां कृत्वा शिरःस्थानं पश्चिमे चरणद्वयम् । विधाय दर्भशयनं शयानः पुरुषो यथा ॥२१॥
गन्धर्वराजस्तं दृष्ट्वा भार्यया सह तत्क्षणम् । योगेन ब्रह्म संप्राप श्रीकृष्णं मनसा स्मरन् ॥२२॥
पत्न्यश्च बान्धवाः सर्वे विलप्य रुरुदुर्भृशम् । जग्मुः क्रमेण शोकार्ता मोहिता विष्णुमायया ॥२३॥
पञ्चाशद्योषितां मध्ये प्रधाना महिषी च या । साध्वी मालावती नाम्ना परमा प्रेयसी वरा ॥२४॥

होती। संसार में सभी को क्रमशः सुख और दुःख प्राप्त होते हैं ॥११॥ इतना कहकर ब्रह्मा पुष्कर स्थान से अपने धाम को चले गये और उपबर्हण नामक गन्धर्व ने उसी समय अपने शरीर को त्याग दिया ॥१२॥ उन्होंने सर्वप्रथम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामक षट्चक्र का भेदन करके इडा, सुषुम्ना, मेधा, पिंगला, प्राणहारिणी, सर्वज्ञानप्रदा, मनःसंयमिनी, विशुद्धा, निरुद्धा, वायु-संचारिणी, तेज को सुखाने वाली, बल-पुष्टि करने वाली, बुद्धि-संचारिणी, ज्ञान को विकसित करने वाली, सर्वप्राणहरा और पुनर्जीवन करने वाली इन सोलह प्रकार की नाड़ियों का भेदन किया। अनन्तर मन समेत प्राणवायु को योग द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में लाकर वे योगासन से बैठ गए और दो घड़ी तक उन्होंने मन को आत्मा में ही लगाया। तत्पश्चात् वह जातिस्मर (पूर्वजन्म की बात को याद रखने वाले) योगिराज उपबर्हण ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गए ॥१३-१८॥ शौनक! तीन तार वाली दुर्लभ वीणा को बायें कंधे पर रख कर दाहिने हाथ में शुद्ध स्फटिक की माला लिये वे वेद के सारतत्त्व तथा उद्धार के उत्तम बीज रूप परात्पर परब्रह्ममय 'कृष्ण' इन दो अक्षरों का जप करने लगे। उन्होंने कुश की चटाई पर पूर्व की ओर सिरहाना करके पश्चिम दिशा की ओर दोनों चरण फैला दिये और इस तरह सो गए, मानो कोई पुरुष सो रहा हो। उनके पिता गन्धर्वराज ने उन्हें इस प्रकार देहत्याग करते देख कर स्वयं भी अपनी पत्नी के साथ मन ही मन श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए योगधारण द्वारा प्राण त्याग दिये और परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया। उस समय उपबर्हण के सभी भाई बन्धु और पत्नियाँ बार बार विलाप करते हुए जोर-जोर से रोने लगे। विष्णु की माया से मोहित होने के कारण शोक से पीड़ित हो वे उनके शरीर के पास गए। उपबर्हण की पचास स्त्रियों में मालावती नामक प्रधान रानी,

---

१ ख. ०णहारि०।

उच्चै रुरोद सा तीव्रं कान्तं कृत्वा च वक्षसि। इत्युवाच च शोकार्ता कान्तं संबोध्य चैव हि ॥२५॥

मालावत्युवाच

हे नाथ रमण श्रेष्ठ विदग्ध रसिकेश्वर। दर्शनं देहि मां बन्धो निमग्नां शोकसागरे ॥२६॥
विस्रम्भके[1] सुवसने रम्ये[2] चन्दनकानने। पुष्पभद्रानदीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥२७॥
चन्दनाचलसांनिध्ये चारुचन्दनकानने। पुष्पचन्दनतल्पे च चन्दनानिलवासिते ॥२८॥
गन्धमादनशैलैकदेशे रम्ये नदीतटे। पुंस्कोकिलनिनादे च मालतीजलशालिनि ॥२९॥
श्रीशैले श्रीवने दिव्ये श्रीनिवासनिषेविते। श्रीयुक्ते श्रीपदाम्भोजे पूतेऽच्युतकृते शुभे ॥३०॥
पुरा या या कृता क्रीडा वसन्ते रहसि त्वया। मया च दुर्हृदा सार्धं तया वै दूयते मनः ॥३१॥
सुधातुल्येन वचसा सिक्ताऽहं च पुरा त्वया। दूयते सततं तेन परमात्माऽतिदारुणः ॥३२॥
साधुना सह संसर्गो वैकुण्ठादपि दुर्लभः। अहो ततोऽतिविच्छेदो मरणादपि दुष्करः ॥३३॥
तस्मात्तेषां च विच्छेदः साधुशोककरः परः। ततोऽपि बन्धुविच्छेदः शोकः परमदारुणः ॥३४॥
ततोऽपत्यवियोगो हि मरणादतिरिच्यते। सर्वस्मात्पतिभेदो हि तत्परं नास्ति संकटम् ॥३५॥
शयने भोजने स्नाने स्वप्ने जागरणेऽपि च। स्वामिविच्छेददुःखं च नूतनं च दिने दिने ॥३६॥
सर्वशोकं विस्मरेत्स्त्री स्वामिसंयोगमात्रतः। बन्धुमन्यं न पश्यमि यं दृष्ट्वा विस्मरेत्पतिम् ॥३७॥

जो पतिव्रता श्रेष्ठ एवं पति की परम प्रेयसी थी, अपने पति को छाती से लगाकर अत्यन्त उच्च स्वर से रोदन करने लगी ॥१९-२५॥

मालावती ने कहा—नाथ! रमण! उत्तम! चतुर! रसिकेश्वर! बन्धो! मैं शोकसागर में डूब रही हूँ, मुझे दर्शन देने की कृपा करो ॥२६॥ विश्वस्त गृह में, रमणीय चन्दनवन में, पुष्प भद्रानदी के तट पर मनोहर पुष्पवाटिका में, मलयपर्वत के समीप सुन्दर चन्दनवन में चन्दन-वायु से सुवासित, पुष्पचन्दन की शय्या पर, गन्धमादनपर्वत के एकदेश में, रमणीय नदी-तट पर, नर कोकिलों से निनादित तथा मालतीपुष्पसम्पृक्त जल से युक्त श्रीपर्वत पर, लक्ष्मीरमण (विष्णु) से सेवित, श्रीयुक्त, श्रीचरणकमल से पूत तथा श्री विष्णु से पवित्र किये हुए दिव्य जीवन में पहले वसन्त ऋतु में एकान्त में मुझ दुष्टहृदया के साथ आपने जो-जो क्रीड़ायें कीं, उन (का स्मरण होने) से मेरा मन परितप्त हो रहा है। पहले आप अपनी अमृतोपम वाणी से मुझे सिंचित करते थे, उस (के स्मरण) से भी मेरा अत्यन्त कठोर आत्मा परम दुःखी हो रहा है। साधु पुरुष का संग वैकुंठ-सुख से भी बढ़कर है। हाय, उस (साधु-संग) से वंचित होना मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी है ॥२७-३३॥ इसलिये उन लोगों का नाश होना सज्जनों के लिए अत्यन्त दुःखप्रद है। उससे भी परम दारुण शोक बन्धुवियोग में होता है और सन्तान का वियोग तो मरण से भी बढ़कर होता है। किन्तु सभी दुःखों से पतिवियोग अत्यन्त दुःखदायी होता है। उससे अधिक संकट कोई है ही नहीं ॥३४-३५॥ क्योंकि शयन, भोजन, स्नान और सोते-जागते सभी समय पति का वियोग-दुःख दिन-दिन नवीन होता जाता है ॥३६॥ स्त्री पति के संयोग मात्र से समस्त दुःखों को भुला देती है। किन्तु मुझे ऐसा अन्य कोई

---

१ क. ०स्रस्तके। २ क. ०म्ये नन्द०।

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं स्वामिना विना। साध्वीनां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥३८॥
हे दिगीशाश्च दिक्पाला हे धर्म त्वं प्रजापते। गिरीश कमलाकान्त पतिदानं च देहि मे ॥३९॥
इत्युक्त्वा विरहार्ता सा कन्या चित्ररथस्य च। मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने वने ॥४०॥
विचेतना तत्र तस्थौ कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि। परिपूर्णे दिवानक्तं सर्वैर्देवैश्च रक्षिता ॥४१॥
प्रभाते चेतनां प्राप्य विललाप भृशं मुहुः। इत्युवाच पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती ॥४२॥

मालावत्युवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ माहं जगद्बहिः। त्वमेव जगतां पाता मां न पासि कथं प्रभो ॥४३॥
अयं भर्ताऽस्य भार्याऽहं ममेति तव मायया। त्वमेव संभवो भर्ता सर्वेषां सर्वकारणः ॥४४॥
गन्धर्वः कर्मणा कान्तः कान्ताऽहं चास्य कर्मणा। क्व गतः कर्मभोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम् ॥४५॥
को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो। संयुनक्ति विधाता च वियुनक्ति च कर्मणा ॥४६॥
संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसंकटम्। शश्वज्जगति मूर्खस्य नाऽऽत्मारामस्य निश्चितम् ॥४७॥
नश्वरो विषयः सत्यं भुवि भोगश्च बान्धवः। स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखाय त्याजितः परैः ॥४८॥
तस्मात्सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम्। ध्यायन्ते सततं कृष्णपादपद्मं निरापदम् ॥४९॥

बन्धु नहीं दिखायी पड़ता है, जिसे देखकर पति को भुला सकूं ॥३७॥ इस बात को स्वयं ब्रह्मा ने भी कहा है कि—कुलीन पतिव्रताओं के लिए पति के अतिरिक्त उससे उत्तम अन्य कोई बन्धु नहीं है ॥३८॥ हे दिशाओं के अधीश्वर, दिक्पाल! हे धर्म! हे प्रजापते, हे शिव, हे लक्ष्मीरमण! मुझे पतिदान देने की कृपा करो ॥३९॥ उस दुर्गम एवं घोर वन में चित्ररथ की वह कन्या इतना कह कर मूर्च्छित हो गयी ॥४०॥ पति को अपनी छाती से लगाये वह पूरे एक दिन और एक रात चेतनाहीन रही। उस समय सकल देवों ने उसकी रक्षा की ॥४१॥ प्रातःकाल चेतना मिलने पर वह बार-बार अत्यन्त विलाप करने लगी। वहाँ उस सती ने भगवान् को सम्बोधित करके (अपने विलाप में) इस प्रकार कहा ॥४२॥

मालावती बोली—हे कृष्ण! आप सम्पूर्ण जगत् के नाथ हैं। हे नाथ! मैं भी जगत् से बाहर नहीं हूँ। प्रभो! आप जगत् की रक्षा करते हैं, तो मेरी रक्षा क्यों नहीं कर रहे हैं? ॥४३॥ यह मेरा पति है और मैं इसकी पत्नी हूँ, यह 'मेरा-तेरा' का भाव आपकी माया है। आप ही सबके स्वामी हैं और ऐसा होना ही अधिक संभव है; क्योंकि आप ही सबके कारण हैं ॥४४॥ कर्मवश गन्धर्व मेरे पति हुए और कर्मवश ही मैं उनकी पत्नी हुई। किन्तु कर्मभोग के अन्त में वे मुझ प्रिया को छोड़कर कहाँ चले गये? ॥४५॥ अथवा प्रभो! कौन किसका पति या पुत्र है तथा कौन किसकी प्रेयसी? विधाता ही कर्म के अनुसार प्राणियों को संयुक्त और वियुक्त करता रहता है ॥४६॥ किन्तु सदा संसार में मूर्खों को ही संयोग में परमानन्द की प्राप्ति और वियोग में प्राणसंकट उपस्थित हो जाता है। आत्मा में रमण करने वाले महात्माओं को निश्चित ही यह दुःख प्राप्त नहीं होता है ॥४७॥ यह सत्य है कि भूतल के सभी विषय, उनके भोग और बान्धव आदि नश्वर हैं। इनका स्वयं त्याग करना सुखकर होता है और दूसरे के द्वारा त्याग करवाने पर ये दुःखप्रद प्रतीत होते हैं ॥४८॥ इसीलिए सन्त लोग अपने अभिलषित परम ऐश्वर्य का भी स्वयं त्याग करके भगवान् श्रीकृष्ण के निरापद चरणकमल का ही निरन्तर ध्यान करते रहते

सर्वत्र ज्ञानिनः सन्तः का स्त्री ज्ञानवती भुवि। ततो मह्यं विमूढायै दातुमर्हसि वाञ्छितम् ॥५०॥
न मे वाञ्छाऽमरत्वे च शक्रत्वे मोक्षवर्त्मनि। इमं कान्तं वरं देहि चतुर्वर्गकरं परम् ॥५१॥
यावती कामिनीजातिर्जगत्यां जगदीश्वर। कस्यैचिन्नहि दत्तश्च तेन धात्रेदृशः पतिः ॥५२॥
तस्मै दत्ताः गुणाः सर्वे रूपाणि विविधानि च। सुशीलानि च सर्वाणि चामरत्वं विना हरे ॥५३॥
रूपेण च गुणेनैव तेजसा विक्रमेण च। ज्ञानेन शान्त्या संतुष्ट्या हरितुल्यः प्रभुर्मम ॥५४॥
हरिभक्तो हरिसमो गाम्भीर्ये सागरो यथा। दीप्तिमान्सूर्यतुल्यश्च शुद्धो वह्निसमस्तथा ॥५५॥
चन्द्रतुल्यः सुदृश्यश्च कन्दर्पसमसुन्दरः। बुद्ध्या बृहस्पतिसमः काव्ये कविसमस्तथा ॥५६॥
वाणी च सर्वशास्त्रज्ञा प्रतिभायां भृगोरिव। कुबेरतुल्यो धनवान्महान्दाता मनोरिव ॥५७॥
धर्मे धर्मसमो धर्मी सत्ये सत्यव्रताधिकः। कुमारतुल्यतपसा स्वाचारे ब्रह्मणा समः ॥५८॥
ऐश्वर्ये शक्रतुल्यश्च सहिष्णुः पृथिवीसमः। एवंभूतो मृतः कान्तः प्राणा यान्ति न मे कथम् ॥५९॥
अहो[1] सुरा यज्ञभाजो घृतं भोक्तुं क्षमा भुवि। क्षणेनायज्ञभाजश्च करिष्यामि स्वलीलया ॥६०॥
नारायण जगत्कान्त नाहमेव जगद्बहिः। शीघ्रं जीवय मत्कान्तमन्यथा त्वां शपाम्यहम् ॥६१॥

हैं॥४९॥ पृथ्वी पर ज्ञानी महात्मा सब जगह हैं, किन्तु ज्ञानवती स्त्री कौन है? अतः आप मुझ मूढ़ अबला को मेरी अभिलषित वस्तु प्रदान करने की कृपा करें॥५०॥ मुझे अमरत्व, इन्द्रत्व अथवा मोक्ष की इच्छा नहीं है। अतः चारों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) के परम साधक मेरे इस पति को मुझे दे दें॥५१॥ हे जगदीश्वर! इस जगत् में जितनी स्त्री जातियाँ हैं, उनमें से किसी को भी ब्रह्मा ने ऐसा पति नहीं दिया है॥५२॥ हरे! ब्रह्मा ने केवल अमरत्व को छोड़ कर सभी गुण, विविध भाँति के समस्त रूप तथा सब प्रकार के सुन्दर स्वभाव उन्हें (मेरे पति को) प्रदान किए हैं॥५३॥ मेरे स्वामी रूप, गुण, तेज, पराक्रम, ज्ञान, शान्ति और सन्तुष्टि में भगवान् के समान हैं॥५४॥ वे (मेरे पति), हरि के भक्तों में हर के समान तथा गम्भीरता में सागर के समान हैं। वे सूर्य के समान देदीप्यमान, अग्नि के समान शुद्ध, चन्द्रमा के समान अत्यन्त दर्शनीय, काम की भाँति सुन्दर, बुद्धि में बृहस्पति के समान और काव्य में कवि (शुक्राचार्य) के तुल्य हैं॥५५-५६॥ उनकी वाणी सकल शास्त्रों को जानने वाली है। वे प्रतिभा में भृगु के समान तथा धन में कुबेर के तुल्य हैं। वे मनु की भाँति महान् दाता हैं। वे धर्म में धर्म के समान धर्मी, सत्य में सत्यव्रत से भी अधिक, (सनकादि) कुमारों के समान तपस्वी, ब्रह्मा के समान आचारी, इन्द्र के तुल्य ऐश्वर्यशाली और पृथ्वी के समान सहिष्णु (सहनशील) हैं। ऐसे मेरे पति जब मृत हो गए तब ये मेरे प्राण क्यों नहीं निकल कर जा रहे हैं? ॥५७-५९॥ अरे देवताओ! तुम लोग पृथ्वी पर यज्ञ में भाग ले कर घृत के पान करने में ही समर्थ हो। (देखो) मैं तुम्हें अभी क्षण मात्र में अपनी लीला द्वारा यज्ञ भाग से अलग कर देती हूँ॥६०॥ हे नारायण! आप समस्त जगत् के नाथ हैं। मैं भी जगत् के बाहर नहीं हूँ। अतः मेरे कान्त को शीघ्र जीवित कीजिए; नहीं तो आपको शाप दे रही हूँ॥६१॥ प्रजापते! पुत्र के शाप से तुम इस भूतल पर अपूज्य हो गए हो। अब

---

१ ख. अरे सु०।

प्रजापते पुत्रशापात्त्वमपूज्यो महीतले। तवैवानधिकारित्वं करिष्याम्यधुना भवे ॥६२॥
हे शंभो ज्ञानलोपं ते करिष्यामि शपेन च। धर्मलोपं च धर्मस्य करिष्याम्येव लीलया ॥६३॥
यमाधिकारं दूरे च करिष्यामि न संशयः। सत्यं कालं शपिष्यामि मृत्युकन्यां सुनिष्ठुराम् ॥६४॥
शपामि सर्वानत्रैव जरां व्याधिं विनाऽधुना। व्याधिना जरया मृत्युर्न ह्यभूच्च पतेर्मम ॥६५॥
इत्युक्त्वा कौशिकीतीरे चागच्छच्छप्तुमेव तान्। मालावती महासाध्वी शवं कृत्वा स्ववक्षसि ॥६६॥
तां शप्तुमुद्यतां दृष्ट्वा ब्रह्मा [1]देवपुरोगमः। जगाम शरणं विष्णुं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥६७॥
तत्र स्नात्वा च तुष्टाव परमात्मानमीश्वरम्। विष्णुं ब्रह्मा जगत्कान्तमित्युवाच ह भीतवत् ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

उपबर्हणपत्नी सा कन्या चित्ररथस्य च। कान्तहेतोश्च मां देवाञ्छपेत्त्वं रक्ष माधव ॥६९॥
स्मरन्ति साधवः सन्तो जपन्ति मुनयो मुदा। स्वप्ने जागरणे चैव सर्वकार्येषु माधवम् ॥७०॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायण। रक्ष रक्ष हृषीकेश व्रजामः शरणं वयम् ॥७१॥
पूजा मे पुत्रशापेन विहता सांप्रतं प्रभो। अधिकारहतं मां च कुरुते मालती सती ॥७२॥
सर्वाधिकारो ब्रह्माण्डे त्वया दत्तः पुरा प्रभो। संपदेतादृशी नाथ यास्यत्येवाधुना मम ॥७३॥

मैं तुम्हें अधिकार से भी च्युत कर दूंगी ॥६२॥ शम्भो! मैं शाप द्वारा तुम्हारे ज्ञान का लोप कर दूंगी और इसी भाँति धर्म के धर्म को मैं लीला द्वारा उड़ा दूंगी ॥६३॥ यम को भी उनके अधिकार से पृथक् कर दूंगी, इसमें संशय नहीं। इसी भाँति मैं काल तथा अत्यन्त निष्ठुर मृत्यु-कन्या को भी शाप देने जा रही हूँ ॥६४॥ बुढ़ापे और व्याधि से हमारे पति की मृत्यु नहीं हुई है। अतः इन दोनों को छोड़ कर अन्य सभी को मैं अभी शाप देने जा रही हूँ। ॥६५॥ इतना कह कर महापतिव्रता मालावती पति के शव को गोद में लेकर उन लोगों को शाप देने के लिए कौशिकी नदी के तट पर चली गयी। उसे शाप देने के लिए उद्यत देख कर ब्रह्मा आदि सभी देवगण क्षीरसागर के तट पर भगवान् विष्णु की शरण में गए ॥६६-६७॥ वहाँ स्नान करके ब्रह्मा भयभीत की भाँति उन जगत्पति विष्णु की, जो परमात्मा और ईश्वर कहे जाते हैं, स्तुति करने लगे ॥६८॥

ब्रह्मा बोले—माधव! उपबर्हण की पत्नी और चित्ररथ की कन्या मालावती अपने पति के कारण मुझे और देवों को शाप देने जा रही है, उससे हमारी रक्षा कीजिए ॥६९॥ सोते-जागते सभी कार्यों में साधु लोग भगवान् कृष्ण का स्मरण करते हैं और मुनि लोग उनका जप करते हैं ॥७०॥ शरण में आए हुए दीन-दुखियों की रक्षा करने में तत्पर! हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी)! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हम लोग आपकी शरण में आए हैं ॥७१॥ प्रभो! पुत्र के शाप द्वारा हमारी पूजा तो नष्ट ही हो गयी है, अब सती मालावती मुझे अधिकार से भी च्युत कर रही है ॥७२॥ प्रभो! पूर्व समय में आपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मुझे अधिकार प्रदान किया था। किन्तु नाथ! इस समय हमारी इस भाँति की सम्पत्ति भी हमसे पृथक् हो जायगी ॥७३॥

---

१ क. देवाः ब्रह्मपुरोगमाः। प्रजग्मुः श०।

महादेव उवाच

त्वया दत्तं महाज्ञानं गुप्तं सर्वेषु दुर्लभम्। शतमन्वन्तरतपःफलेन[1] पुष्करे पुरा॥७४॥
ऐश्वर्यं वा धनं वाऽपि विद्या वा विक्रमोऽथवा। ज्ञानस्य परमार्थस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥७५॥
सर्वज्ञातं सर्वगुप्तमत्यन्तं दुर्लभं परम्। मम तत्त्वज्ञानरत्नं शापान्निर्याति योषितः॥७६॥
अहो पतिव्रतातेजः सर्वेषां तेजसां परम्। तेजोऽनलेन दग्धं मां रक्ष रक्ष हरे हरे॥७७॥

धर्म उवाच

सर्वरत्नात्परं रत्नं धर्म एव सनातनः। यास्यत्येवंविधो धर्मस्त्वया दत्तः पुरा प्रभो॥७८॥
सप्तमन्वन्तरतपः फलेन परमेश्वर। प्राप्तो धर्मोऽधुना याति शापेन योषितः प्रभो॥७९॥

देवा ऊचुः

यज्ञभाजो घृतभुजो वयमेव त्वया कृताः। योषिच्छापेन तत्सर्वमधुना याति माधव॥८०॥
इत्युक्त्वा संयताः सर्वे तस्थुस्तत्र भयार्दिताः। एतस्मिन्नन्तरेऽकस्माद्वागभूवाशरीरिणी॥८१॥
यूयं गच्छत तन्मूलं विप्ररूपी जनार्दनः। पश्चाद्यास्यति शान्त्यर्थमिति वो रक्षणाय च॥८२॥
श्रुत्वा तद्वचनं देवाः प्रहृष्टमनसोन्मुखाः। जग्मुर्मालावतीस्थानं कौशिकीतीरमीश्वराः॥८३॥

महादेव बोले—पूर्व समय में पुष्कर क्षेत्र में सौ मन्वन्तर-काल तक तप करने के फलस्वरूप आपने मुझे महाज्ञान प्रदान किया था, जो गुप्त एवं सब के लिए दुर्लभ है॥७४॥ ऐश्वर्य, धन, विद्या तथा विक्रम उस परमार्थ ज्ञान की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं॥७५॥ सब से अज्ञात, सब से गुप्त एवं अत्यन्त दुर्लभ और उत्कृष्ट वह मेरा तत्त्वज्ञानरत्न स्त्री के शाप द्वारा नष्ट हो रहा है॥७६॥ अहो! (आश्चर्य है) पतिव्रता का तेज सभी तेजों से श्रेष्ठ है। इसीलिए, हे हरे, उस तेज रूप अग्नि से मैं दग्ध हो रहा हूँ, मेरी रक्षा करें॥७७॥

धर्म बोले—प्रभो! आपने प्राचीन काल में मुझे धर्म प्रदान किया था, जो सभी रत्नों से अत्युत्तम और सनातन है। वह अब मुझसे पृथक् होकर जा रहा है॥७८॥ परमेश्वर! सात मन्वन्तरों के समय तक तप करने के परिणामस्वरूप वह मुझे प्राप्त हुआ था। किन्तु प्रभो! वह धर्म स्त्री के शाप द्वारा (मुझसे अलग होने) जा रहा है॥७९॥

देवों ने कहा—माधव! हमें यज्ञों में भाग लेने और घृत भक्षण करने के लिए आपने नियुक्त किया था। स्त्री के शाप वश यह सब इस समय नष्ट होने जा रहा है॥८०॥ भयभीत देवगण इतना कह कर संयम के साथ उसी स्थान पर खड़े रहे। उसी बीच अकस्मात् आकाशवाणी हुई कि तुम लोग उस (मालावती) के पास चलो। पीछे से उसको शान्त करने और तुम लोगों की रक्षा करने के लिए भगवान् जनार्दन ब्राह्मण-वेष में वहाँ पहुँच रहे हैं॥८१-८२॥ उस वाणी को सुन कर देवताओं का मन प्रसन्नता से खिल उठा और वे कौशिकी-तट पर पहुँच कर पतिव्रता मालावती के स्थान में गए॥८३॥ वह रत्नों के सारभूत इन्द्रनील आदि मणियों के आभूषणों

---

१ क. ०न प्रतिपादितम्०। ७४। ऐ।

तामेव ददृशुर्देवा देवीं मालावतीं सतीम्। रत्नसारेन्द्रभूषाभिरुज्ज्वलां कमलाकलाम् ।।८४।।
वह्निशुद्धांशुकाधानां सिन्दूरबिन्दुभूषिताम्। शरच्चन्द्रप्रभां शान्तां द्योतयन्तीं दिशस्त्विषा ।।८५।।
पतिसेवामहाधर्मचिरसंचिततेजसा। प्रज्वलन्तीं सुप्रदीप्तशिखां वह्नेरिवोत्तमाम् ।।८६।।
योगासनं कुर्वतीं च शववक्षःस्थलस्थिताम्। सुरम्यां स्वामिनो वीणां बिभ्रती दक्षिणे करे ।।८७।।
तर्जन्यङ्गुष्ठकोटिभ्यां शुद्धस्फटिकमालिकाम्। भक्त्या स्नेहेन कान्तस्य बिभ्रती योगमुद्रया ।।८८।।
चारुचम्पकवर्णाभां बिम्बोष्ठीं रत्नमालिनीम्। यथा षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ।।८९।।
बृहन्नितम्बभारार्तां पीनश्रोणिपयोधराम्। पश्यन्तीं शवमीशस्य शुभदृष्ट्या पुनः पुनः ।।९०।।
एवंभूतां च तां दृष्ट्वा देवास्ते विस्मयं ययुः। स्थगितां च क्षणं तत्र धार्मिका धर्मभीरवः ।।९१।।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
मालावतीविलापो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

से भूषित हो भगवती लक्ष्मी की कला-सी जान पड़ती थी ।।८४।। उसके अंगों को अग्नि में तपा कर शुद्ध की हुई सुनहरी साड़ी सुशोभित कर रही थी। भाल देश में सिन्दूर की बेंदी शोभा दे रही थी। वह शरत्काल के चन्द्रमा की शान्त प्रभा-सी प्रकाशित होती और अपनी दीप्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को उद्भासित करती थी। वह पतिसेवा रूप महान् धर्म का अनुष्ठान कर के चिरकाल से संचित किए हुए तेज से अग्नि की उत्तम एवं प्रज्वलितशिखा-सी उद्दीप्त हो रही थी। पति के शव को छाती से लगा कर योगासन लगाये बैठी थी और स्वामी की सुरम्य वीणा को दाहिने हाथ में लिये हुई थी। प्राणवल्लभ के प्रति भक्ति तथा स्नेह के कारण योगमुद्रापूर्वक तर्जनी और अंगुष्ठ अंगुलियों के अग्रभाग से शुद्ध स्फटिक मणि की माला धारण किए थी। मनोहर चम्पा की-सी अंगकान्ति, बिम्बफल के सदृश अरुण ओष्ठ, गले में रत्नों की माला शोभा पाती थी। वह सुन्दरी सोलह वर्ष की-सी अवस्था से युक्त तथा नित्य सुस्थिर यौवन से सम्पन्न थी। उसके नितम्ब विशाल थे और स्तन स्थूल थे। वह सती अपने स्वामी के शव को बारंबार शुभ दृष्टि से देख रही थी ।।८५-९०।।

इस रूप में मालावती को देख कर उन सब देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ। वे सभी धर्मात्मा और धर्मभीरु थे। अतः क्षण भर वहाँ अपने को छिपाये खड़े रहे ।।९१।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में मालावती-विलाप
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।१३।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

तत्र स्थित्वा क्षणं देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः। ययुर्मालावतीमूलं परं मङ्गलदायकाः ॥१॥
मालावती सुरान्दृष्ट्वा प्रणनाम पतिव्रता। रुरोद कान्तं संस्थाप्य देवानां संनिधौ मुने ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्ब्राह्मणबालकः। आजगाम सुराणां च सभामतिमनोहरः ॥३॥
दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्। दीर्घपुस्तकहस्तश्च सुप्रशान्तश्च सुस्मितः ॥४॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। सुरान्संभाष्य तत्रैव विस्मितान्विष्णुमायया ॥५॥
तत्रोवास सभामध्ये तारामध्ये यथा शशी। उवाच देवान्सर्वांश्च मालतीं च विचक्षणः ॥६॥

ब्राह्मण उवाच

कथमत्र सुराः सर्वे ब्रह्मेशानपुरोगमाः। स्वयं विधाता जगतां स्रष्टा वै केन कर्मणा ॥७॥
सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता शम्भुरत्र स्वयं विभुः। अहो त्रिजगतां साक्षी धर्मो वै सर्वकर्मणाम् ॥८॥
कथं रविः कथं चन्द्रः कथमत्र हुताशनः। कथं कालो मृत्युकन्या कथं वाऽत्र यमादयः ॥९॥
हे मालावति ते क्रोडे कोऽतिशुष्कः शवोऽनघे। जीविकायाः कथं मूले योषितश्च पुमाञ्छवैः ॥१०॥

अध्याय १४

विप्रबालक के रूप में विष्णु का मालावती से साथ संवाद

सौति बोले—ब्रह्मा और शिव को आगे किए परम मंगल प्रदान करने वाले देवगण क्षण मात्र वहाँ ठहर कर मालावती के निकट पहुँचे ॥१॥ मुने! पतिव्रता मालावती ने देवों को देख कर उन्हें प्रणाम किया और देवों के समीप अपने पति को रख कर वह रोदन करने लगी ॥२॥ उसी बीच उस देव-सभा में एक अति मनोहर ब्राह्मण-बालक आ गया, जो दण्ड और छत्र लिए, शुक्ल वस्त्र पहने, उज्ज्वल तिलक लगाए एक बड़ी-सी पुस्तक हाथ में लिए अत्यन्त शान्त एवं मन्द मुसकान कर रहा था ॥३-४॥ उसके सम्पूर्ण अंग चन्दन से चर्चित थे। ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित उस बालक ने वहाँ पहुँच कर देवों से बातचीत की जो भगवान् विष्णु की माया से ठगे-से दिखायी दे रहे थे। उस सभामध्य में, ताराओं के बीच चन्द्रमा की भाँति विराजमान उस चतुर बालक ने सभी देवों और मालावती से कहा ॥५-६॥

ब्राह्मण बोले—यहाँ ब्रह्मा और शिव को आगे किए देवगण और जगत् के स्रष्टा स्वयं विधाता भी किस कार्य से उपस्थित हैं? ॥७॥ समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करने वाले साक्षात् शिव भी यहाँ उपस्थित हैं और आश्चर्य है कि तीनों लोकों में सभी कर्मों के साक्षी धर्म भी यहाँ उपस्थित हैं ॥८॥ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, काल, मृत्युकन्या और यम आदि ये सभी लोग यहाँ क्यों आए हैं? हे मालावती! हे निष्पाप! तुम्हारी गोद में यह सूखा हुआ शव किसका दिखायी दे रहा है? जीवित स्त्री के पास यह पुरुष-शव क्यों है? ॥९-१०॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण सभा में देवों तथा

इत्युक्त्वा तांश्च तां विप्रो विरराम सभातले। मालावती तं प्रणम्य समुवाच विचक्षणम् ॥११॥

मालावत्युवाच

आनन्दपूर्वकं वन्दे विप्ररूपं जनार्दनम्। तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च ॥१२॥
अवधानं कुरु विभो शोकार्तया निवेदने। समा कृपा सतां शश्वद्योग्यायोग्ये कृपावताम् ॥१३॥
उपबर्हणभार्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च। सर्वे मालावतीं कृत्वा वदन्ते विप्रपुंगव ॥१४॥
दिव्यं लक्षयुगं रम्ये स्थाने स्थाने मनोहरे। कृता स्वच्छन्दतः क्रीडा चानेन स्वामिना सह ॥१५॥
प्रिये स्नेहो हि साध्वीनां यावान्विप्रेन्द्र योषिताम्। सर्वं शास्त्रानुसारेण जानासि त्वं विचक्षण ॥१६॥
अकस्माद्ब्रह्मणः शापात्प्राणांस्तत्याज मत्पतिः। देवानुद्दिश्य विलपे यथा जीवति मत्पतिः ॥१७॥
स्वकार्यसाधने सर्वे व्यग्राश्च जगतीतले। भावाभावं न जानन्ति केवलं स्वार्थतत्पराः ॥१८॥
सुखं दुःखं भयं शोकः संतापः कर्मणां नृणाम्। ऐश्वर्यं परमानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम् ॥१९॥
देवाश्च[1] सर्वजनका दातारः कर्मणां फलम्। कर्तारः कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं च लीलया ॥२०॥
नहि देवात्परो बन्धुर्नहि देवात्परो बली। दयावान्नहि देवाच्च न च दाता ततः परः ॥२१॥

मालावती से कह कर चुप हो गया। अनन्तर मालावती उस बुद्धिमान् ब्राह्मण को प्रणाम करके उससे बोली ॥११॥

मालावती बोली—मैं विप्र रूपी जनार्दन को प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करती हूँ, जिनके दिए हुए पुष्प और जल से देवगण और विष्णु भी सन्तुष्ट होते हैं ॥१२॥ प्रभो! आप सावधान होकर मुझ शोक-पीड़िता का निवेदन सुनने की कृपा करें; क्योंकि कृपाशील सज्जनों की कृपा योग्य और अयोग्य सब पर सदा समान रूप से प्रकट होती है ॥१३॥ विप्रपुंगव! मैं उपबर्हण की भार्या चित्ररथ की कन्या हूँ। मुझे सब मालावती कहते हैं ॥१४॥ रमणीक और मनोहर प्रत्येक स्थान में मैंने अपने इस स्वामी के साथ लक्ष दिव्य वर्षों तक स्वतन्त्र विहार किया है। विप्रेन्द्र! विद्वान्! साध्वी स्त्रियों का अपने प्रियतम के प्रति कितना स्नेह होता है। वह सब आपको शास्त्रानुसार विदित है ॥१५-१६॥ ब्रह्मा के आकस्मिक शाप द्वारा मेरे पतिदेव ने अपने प्राणों का त्यागकर दिया है। देवों के सम्मुख मैं इसलिए विलाप कर रही हूँ कि मेरे पति जीवित हो जायँ ॥१७॥ क्योंकि संसार में सभी लोग अपने कार्यों की सिद्धि में व्यग्र रहते हैं। वे लाभ-हानि को नहीं जानते। केवल अपने स्वार्थ में ही लीन रहते हैं ॥१८॥ मनुष्यों के सुख, दुःख, भय, शोक, सन्ताप, ऐश्वर्य, परमानन्द, जन्म, मृत्यु, और मोक्ष कर्मों के फल हैं। देवता सबके जनक हैं। वे ही कर्मों का फल देते हैं। साथ ही वे लीलापूर्वक कर्मवृक्ष का मूलोच्छेदन करने में भी समर्थ हैं ॥१९-२०॥ क्योंकि देवों से बढ़कर बन्धु, देवों से बढ़कर बलवान् तथा दयावान् और देवों से बढ़कर कोई दाता नहीं है। इसीलिए धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के फल देने वाले कल्पवृक्ष रूप देवों से मैं याचना करती हूँ कि वे मुझे अभिलषित पति-दान

---

१ क. ०श्च कर्मज०।

सर्वान्देवानहं याचे पतिदानं ममेप्सितम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदांश्च सुरद्रुमान् ॥२२॥
यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदानं यथेप्सितम्। भद्रं तदाऽन्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीवधं ध्रुवम् ॥२३॥
शपिष्यामि च सर्वांश्च दारुणं दुर्निवारकम्। दुर्निवार्यः सतीशापस्तपसा केन वार्यते ॥२४॥
इत्युक्त्वा मालती साध्वी शोकार्ता सुरसंसदि। विरराम द्विजश्रेष्ठस्तामुवाच च शौनक ॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

कर्मणां फलदातारो देवाः सत्यं च मालति। न सद्यः सुचिरेणैव धान्यं कृषकवन्नृणाम् ॥२६॥
गृही च कृषकद्वारा क्षेत्रे धान्यं वपेत्सति। तदङ्कुरो भवेत्काले काले वृक्षः फलत्यपि ॥२७॥
काले सुपक्वं भवति काले प्राप्नोति तद्गृही। एवं सर्वं समुन्नेयं चिरेण कर्मणः फलम् ॥२८॥
अष्ठीं वपति संसारे गृहस्थो विष्णुमायया। काले तदङ्कुरो वृक्षः काले प्राप्नोति तत्फलम् ॥२९॥
पुण्यवान्पुण्यभूमौ च करोति सुचिरं तपः। तेषां च फलदातारो देवाः सत्यं न संशयः ॥३०॥
ब्राह्मणानां मुखे क्षेत्रे श्रेष्ठेऽनूषर एव च। यो यज्जुहोति भक्त्या च स तत्प्राप्नोति निश्चितम् ॥३१॥
न बलं न च सौन्दर्यं नैश्वर्यं न धनं सुतः। नैव स्त्री न च सत्कान्तः किं भवेत्तपसा विना ॥३२॥
सेवते प्रकृतिं यो हि भक्त्या जन्मनि जन्मनि। स लभेत्सुन्दरीं कान्तां विनीतां च गुणान्विताम् ॥३३॥
श्रियं च निश्चलां पुत्रं पौत्रं भूमिं धनं प्रजाम्। प्रकृतेश्च[1] वरेणैव लभेद्भक्तोऽवलीलया ॥३४॥

देने की कृपा करें ॥२१-२२॥ देवगण! यदि आप लोग मुझे अभीष्ट पतिदान देंगे तब तो कुशल है; नहीं तो मैं निश्चित ही स्त्रीवध का पाप इन्हें दूंगी। और सभी देवों को कठोर एवं दुर्निवार शाप प्रदान करूँगी। सती का शाप दुर्निवार होता ही है। किस तपस्या से उसका निवारण किया जाएगा? ॥२३-२४॥ हे शौनक! इतना कहकर शोक-सन्तप्त मालावती उस देवसभा में चुप हो गई। तत्पश्चात् उस द्विज-श्रेष्ठ ने उससे कहा ॥२५॥

ब्राह्मण बोले—हे मालावति! यह सत्य है कि देवलोग मनुष्यों को उनके कर्मों के फल प्रदान करते हैं, किन्तु तत्काल नहीं। ठीक वैसे ही, जैसे किसान बोये हुए अनाज का फल तुरन्त नहीं, देर से पाता है ॥२६॥ गृहस्थ हलवाहे के द्वारा खेतों में बीज बोता है। उसका अंकुर समय पर प्रकट होता है। फिर समय आने पर वह वृक्ष होता हे और फलता भी है ॥२७॥ समय पाकर वह भलीभाँति पकता है तथा समय पर वह गृही उसे प्राप्त करता है। इसी प्रकार कर्म का फल भी देर में प्राप्त होता है ॥२८॥ भगवान् विष्णु की माया से मोहित होकर गृही संसार में बीज बोता है, समय पर उसमें अंकुर निकलता है और समय प्राप्त होने पर वही वृक्ष होकर फलता है जो गृही को प्राप्त होता है ॥२९॥ पुण्यात्मा पुरुष पुण्यभूमि में अति चिरकाल तक जो तप करता है उसका फल देने वाले सचमुच देवता ही हैं, इसमें संशय नहीं है ॥३०॥ ब्राह्मणों के मुख में तथा उत्तम उर्वरा भूमि में मनुष्य भक्तिपूर्वक जो आहुति डालता है, उसका फल उसे निश्चित रूप से प्राप्त होता है ॥३१॥ बिना तप किये बल, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, धन, पुत्र, स्त्री और मनोहर पति की प्राप्ति नहीं होती (अर्थात् तप के बिना कुछ भी नहीं होता)। जो जन्मजन्मान्तर तक भक्तिपूर्वक प्रकृति (दुर्गा देवी) की सेवा करते हैं, उन्हें गुणवती, विनीत और सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति होती है ॥३२-३३॥ प्रकृति के वरदान द्वारा भक्त पुरुष लीलापूर्वक निश्चल लक्ष्मी, पुत्र, पौत्र, भूमि, धन एवं प्रजा को प्राप्त

[1] क. ०श्च प्रियेणै०।

शिवं शिवस्वरूपं च शिवदं शिवकारणम्। ज्ञानानन्दं महात्मानं परं मृत्युंजयं वरम् ॥३५॥
तमीशं सेवते यो हि भक्त्या जन्मनि जन्मनि। पुमान्प्राप्नोति सत्कान्तां कामिनी चापि सत्पतिम् ॥३६॥
विद्यां ज्ञानं सुकवितां पुत्रं पौत्रं परां श्रियम्[1]। बलं धनं विक्रमं च लभेद्धरवरेण सः ॥३७॥
ब्रह्माणं भजते यो हि लभेत्सोऽपि प्रजां श्रियम्। विद्यामैश्वर्यमानन्दं वरेण ब्रह्मणो नरः ॥३८॥
यो नरो भजते भक्त्या दीननाथं दिनेश्वरम्। विद्यामारोग्यमानन्दं धनं पुत्रं लभेद्ध्रुवम् ॥३९॥
गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम्। सर्वाग्रपूज्यं सर्वेशं भक्त्या जन्मनि जन्मनि ॥४०॥
विघ्ननाशो भवेत्तस्य स्वप्ने जागरणेऽनिशम्। परमानन्दमैश्वर्यं पुत्रं पौत्रं धनं प्रजाः ॥४१॥
ज्ञानं विद्यां सुकवितां लभते तद्वरेण च। भजते यो हि विष्णुं च लक्ष्मीकान्तं सुरेश्वरम् ॥४२॥
वरार्थी चेल्लभेत्सर्वं निर्वाणमन्यथा ध्रुवम्। शान्तं निषेव्य पातारं सत्यं सत्यं लभेन्नरः ॥४३॥
सर्वं तपः सर्वधर्मं यशः कीर्तिमनुत्तमाम्। विष्णुं निषेव्य सर्वेशं यो मूढो लभते वरम् ॥४४॥
विडम्बितो विधात्राऽसौ मोहितो विष्णुमायया। माया नारायणीशाना सर्वप्रकृतिरीश्वरी ॥४५॥
सा कृपां कुरुते यं च विष्णुमन्त्रं ददाति तम्। धर्मं यो भजते धर्मो सर्वधर्मं लभेद्ध्रुवम् ॥४६॥

करता है ॥३४॥ जो प्रत्येक जन्म में भक्तिपूर्वक कल्याणस्वरूप, कल्याणप्रद, कल्याण के कारण, ज्ञानानन्द की मूर्ति, श्रेष्ठ महात्मा और मृत्यु के विजेता शिव की सेवा करता है, वह पुरुष प्रत्येक जन्म में सुन्दरी स्त्री प्राप्त करता है, और शंकर की आराधना करने वाली स्त्री प्रत्येक जन्म में उत्तम पति पाती है। शिव के वर से मनुष्य को विद्या, ज्ञान, उत्तम कविता, पुत्र, पौत्र, उत्तम स्त्री, बल, धन एवं विक्रम की प्राप्ति होती है ॥३५-३७॥ ब्रह्मा की सेवा करने वाले भी ब्रह्मा के वरदान द्वारा प्रजा (सन्तान) लक्ष्मी, विद्या, ऐश्वर्य और आनन्द की प्राप्ति करते हैं।।३८॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक दीनों के नाथ दिनेश्वर सूर्य की सेवा करता है, उसे भी विद्या, आरोग्य, आनन्द, धन और पुत्र की निश्चित प्राप्ति होती है ॥३९॥ प्रत्येक जन्म में जो भक्तिपूर्वक सबसे प्रथम पूजने योग्य, सर्वेश्वर, सनातन, देवाधिदेव गणेश्वर की पूजा करता है, उसके सोते-जागते सभी समय के विघ्नों का नाश होता है और परमानन्द, ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्र, धन, प्रजा, ज्ञान, विद्या एवं सुन्दर कविता उसे उनके वरदान द्वारा प्राप्त होती है। जो देवों के अधीश्वर एवं लक्ष्मी के कान्त भगवान् विष्णु की सेवा करता है, वह यदि वरदान चाहता है तो उसे वह सम्पूर्ण वर प्राप्त हो जाता है; अन्यथा उसे निर्वाण की प्राप्ति तो निश्चित ही होती है। उस शान्त एवं रक्षक विष्णु की सेवा करके मनुष्य निश्चित रूप से समस्त तप, सम्पूर्ण धर्म, यश और परमोत्तम कीर्ति को प्राप्त कर लेता है। जो मूढ़ सर्वेश्वर भगवान् विष्णु का सेवन करके उसके बदले में कोई वर लेना चाहता है, उसे विधाता ने ठग लिया और विष्णु की माया ने मोह में डाल दिया (ऐसा समझना चाहिए)। नारायण की माया सब कुछ करने में समर्थ, सबकी कारणभूता और परमेश्वरी है। वह जिस पर कृपा करती है, उसे विष्णुमंत्र देती है। जो धर्मात्मा धर्म की सेवा करता है उसे निश्चित ही सब धर्मों की प्राप्ति होती है ॥४०-४६॥ वह इस लोक में सुखानुभव करने के उपरान्त

---

१ क ०म्। वरं ध०।

इह लोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम् । यो यं देवं भजेद्भक्त्या स चाऽऽदौ लभते च तम् ।।४७।।
काले पश्चात्तेन सार्धं परं विष्णोः पदं लभेत् । श्रीकृष्णं भजते यो हि निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।।४८।।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सेव्यं बीजं परात्परम् । अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ।।४९।।
साकारं च निराकारं ज्योतिः स्वेच्छामयं विभुम् । सर्वाधारं च[1] सर्वेशं परमानन्दमीश्वरम् ।।५०।।
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । जीवन्मुक्तः स सत्यं हि न वरं लभते सुधीः ।।५१।।
स सर्वं मन्यते तुच्छं सालोक्यादिचतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मोक्षं यत्तुच्छवत्सति ।।५२।।
ऐश्वर्यं लोष्टतुल्यं च नश्वरं चैव मन्यते । इन्द्रत्वं च मनुत्वं च चिरजीवित्वमेव वा ।।५३।।
जलबुद्बुदवद्बुद्धया चातितुच्छं न गण्यते । स्वप्ने जागरणे वाऽपि शश्वत्सेवां च वाञ्छति ।।५४।।
दास्यं विना न याचेत श्रीकृष्णस्य पदं परम् । तत्पादाब्जे दृढां भक्तिं लब्ध्वा पूर्णो निरन्तरम् ।।५५।।
परिपूर्णतमं ब्रह्म निषेव्यं सुस्थिरैः सदा । आत्मनः कुलकोटिं च शतं मातामहस्य च ।।५६।।
श्वशुरस्य शतं पूर्वमुद्धृत्य चावलीलया । दासं दासी प्रसूं भार्यां पुत्रादपि परं शतम् ।।५७।।
उद्धरेत्कृष्णभक्तश्च गोलोकं याति निश्चितम् । तावद्गर्भे वसेत्कामी तावती यमयातना ।।५८।।

भगवान् विष्णु का परम पद प्राप्त करता है। जो जिस देव की भक्ति-भावना से उपासना करता है, वह पहले उसी देव को पाता है और पश्चात् समय पाकर उस देवता के साथ वह भगवान् विष्णु के परम धाम में चला जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति से परे तथा तीनों गुणों से अतीत—निर्गुण हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवों के सेव्य, उनके आदि कारण, परात्पर, अविनाशी, परब्रह्म एवं सनातन भगवान् हैं। साकार, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, स्वेच्छामय, व्यापक, सबके आधार, सबके अधीश्वर परमानन्दमय, ईश्वर, निर्लिप्त तथा साक्षीरूप हैं। वे भक्तों के ऊपर कृपा करने के लिए शरीर धारण करते हैं। जो उनकी आराधना करता है, वह सचमुच जीवन्मुक्त है। वह विद्वान् अन्य वरदान कभी नहीं चाहता है ।।४७-५१।। वह सालोक्य आदि चार प्रकार के मोक्ष को भी तुच्छ समझता है और ब्रह्मत्व, अमरत्व तथा मोक्ष भी उसे तुच्छ लगता है। वह ऐश्वर्य को मृत्तिका के समान नश्वर समझता है। उसी प्रकार इन्द्रत्व, मनुत्व और चिरजीवित्व को भी जल के बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर समझकर अत्यन्त तुच्छ गिनने लगता है। वह सोते-जागते सभी समय निरन्तर (श्रीकृष्ण की) सेवा ही चाहता है ।।५२-५४।। दास्य भक्ति के बिना वह भगवान् श्रीकृष्ण का परमपद भी नहीं चाहता है। श्रीकृष्ण के चरणकमल की निरन्तर एवं दृढ़ भक्ति प्राप्त कर वह पूर्णकाम हो जाता है। भगवान् का भक्त अत्यन्त स्थिर होकर सुसेव्य एवं परिपूर्णतम ब्रह्म की निरन्तर सेवा करता है। वह अपने कुल की करोड़ों, मातामह की सैकड़ों तथा श्वशुर की सैकड़ों पूर्व पीढ़ियों का लीलापूर्वक उद्धार करके दास, दासी, माता, स्त्री और पुत्र के बाद की सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार कर देता है और स्वयं निश्चय ही गोलोक में चला जाता है। कामासक्त पुरुष तभी तक गर्भ में निवास करता है, तभी तक यम-यातनाओं को भोगता है एवं गृही तभी तक भोगों को चाहता है, जब तक भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा नहीं करता

---

१ क. च सर्वेषां परमात्मानमी०।

तावद्गृही[1] च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते। गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशयति ॥५९॥
यमस्तल्लिखनं दूरं करोति तत्क्षणं भिया। मधुपर्कादिकं ब्रह्मा पुरैव[2] तन्नियोजयेत् ॥६०॥
अहो विलङ्घ्य मल्लोकं मार्गेणानेन यास्यति। तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥६१॥
दुरितानि च भीतानि कोटिजन्मकृतानि च। तं विहाय पलायन्ते वैनतेयं यथोरगाः ॥६२॥
पुरातनं कृतं कर्म यद्यत्तस्य शुभाशुभम्। छिनत्ति कृष्णश्चक्रेण तीक्ष्णधारेण संततम् ॥६३॥
तं विहाय जरा मृत्युर्याति चक्रभिया सति। अन्यथा शतखण्डं तां कुरुते च सुदर्शनः ॥६४॥
निःशङ्को याति गोलोकं विहाय मानवीं तनुम्। गत्वा दिव्यां तनुं धृत्वा श्रीकृष्णं सेवते सदा ॥६५॥
यावत्कृष्णो हि गोलोके तावद्भक्तो वसेत्सदा। निमेषं मन्यते दासो नश्वरं ब्रह्मणो वयः ॥६६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे
विष्णुमालावतीसंवादो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

है। गुरु के मुख से निकला हुआ विष्णुमन्त्र जिस (व्यक्ति) के कान में प्रविष्ट होता है, उसी क्षण यमराज, भयभीत होकर उसके कर्म-लेख को अपने यहाँ से हटा देते हैं और ब्रह्मा पहले से ही उसके स्वागत के लिए मधुपर्क आदि तैयार करके रखते हैं और सोचते हैं कि अहो! वह मेरे लोक को भी लांघ कर इसी मार्ग से यात्रा करेगा और सौ कोटि कल्पों में भी उसका वहाँ से निष्काशन नहीं होगा ॥५५-६१॥ जैसे गरुड़ को देखकर साँप भाग जाते हैं, उसी तरह करोड़ों जन्मों के किए हुए पाप भी कृष्ण-भक्त को देखकर भाग जाते हैं ॥६२॥ उसके पहले के किये हुए सभी अच्छे बुरे कर्मों को भगवान् श्रीकृष्ण अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र से काट देते हैं ॥६३॥ जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु भी चक्र के भय से उसे छोड़कर भाग जाते हैं, अन्यथा सुदर्शन (चक्र) उसके सैकड़ों टुकड़े कर देता है। वह (भक्त) अपने मनुष्य-शरीर का त्यागकर निःशंक होकर गोलोक में पहुँचता है और वहाँ दिव्य शरीर धारण कर सदा भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करता है ॥६४-६५॥ श्रीकृष्ण जब तक गोलोक में निवास करते हैं तब तक भक्त पुरुष भी वहाँ नित्य निवास करता है। श्रीकृष्ण का दास ब्रह्मा की नश्वर आयु को एक निमेष भर का मानता है ॥६६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में विष्णु और मालावती के
संवाद नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

---

१ क. दृगृहं च भोगोऽपि या०। २ क. पुनरेव नियो०।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि तव प्रियः। सर्वरोगचिकित्सां च जानामि च चिकित्सकः[1] ॥१॥
मृततुल्यं मृतं[2] रोगात्सप्ताहाभ्यन्तरे सति। महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यवलीलया[3] ॥२॥
राजमृत्युं यमं कालं व्याधिमानीय त्वत्पुरः। निबध्य दातुं शक्तोऽहं व्याधो बध्वा पशुं यथा ॥३॥
यतो न संचरेद्व्याधिर्देहेषु देहधारिणाम्। व्याधीनां कारणं यद्यत्सर्वं जानामि सुन्दरि ॥४॥
यतो न संचरेद्व्याधिबीजं दुष्टममङ्गलम्। तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः ॥५॥
यो वा योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च। तस्य तं जीवनोपायं जानामि योगधर्मतः ॥६॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्फीता मालावती सती। सस्मिता स्निग्धचित्ता सा तमुवाच प्रहर्षिता ॥७॥

मालावत्युवाच

अहो श्रुतं किमाश्चर्यं वचनं बालवक्त्रतः। वयसाऽतिशिशुर्दृष्टो ज्ञानं योगविदां परम् ॥८॥

अध्याय १५

ब्राह्मण द्वारा अपनी शक्ति का परिचय

ब्राह्मण बोले—पतिव्रते! यह तुम्हारा पति इस समय किस रोग से मृत्यु को प्राप्त हुआ है? मैं चिकित्सक हूँ, सभी रोगों की चिकित्सा मैं जानता हूँ ॥१॥ सती! यदि कोई रोग से मृतक के समान हो गया हो अथवा मृतक ही हो गया हो, किन्तु यदि यह सात दिन के भीतर की ही घटना हो तो उस जीव को मैं चिकित्सा सम्बन्धी महाज्ञान के द्वारा चुटकी बजाते हुए ही जीवित कर सकता हूँ ॥२॥ मैं जरा, मृत्यु, यम, काल और व्याधियों को तुम्हारे सामने बाँधकर उसी प्रकार तुम्हें सौंप सकता हूँ, जैसे व्याध पशु को बांधकर सामने ला देता है ॥३॥ सुन्दरि! देहधारी प्राणियों के शरीर में जिससे कोई व्याधि उत्पन्न न हो सके, वह उपाय तथा रोगों के सभी कारणों को मैं भली-भाँति जानता हूँ ॥४॥ शास्त्र के तत्त्वज्ञान के अनुसार मैं उस उपाय को भी जानता हूँ जिससे व्याधियों का दुष्ट और अमंगलकारी बीज अंकुरित ही न हो ॥५॥ जिसने योग द्वारा अथवा खेदवश अपने शरीर का त्याग किया है, उसके जीवित होने का उपाय भी योग-धर्म के प्रभाव से मैं जानता हूँ ॥६॥ ब्राह्मण की बातें सुनकर मालावती को बड़ी प्रसन्नता हुई। मन्द मुसकान और स्नेहपूर्ण मन से उसने अत्यन्त हर्षित होकर उनसे कहा ॥७॥

मालावती बोली—अहो! बालक के मुख से मैं कैसी आश्चर्यजनक बात सुन रही हूँ!! अवस्था से तो यह अत्यन्त शिशु दिखायी दे रहा है, किन्तु इसका ज्ञान योगवेत्ताओं से भी बढ़कर है ॥८॥ भगवन्! आपने

---

१ क. ०त्सकान्। २ क. ०तं लोकात्स०। ३ क ०या ॥२॥ जरामृत्युं जराका०।

त्वया कृता प्रतिज्ञा च कान्तं जीवयितुं मम। विपरीतं न सद्वाक्यं तत्क्षणं जीवितः पतिः॥९॥
जीवयिष्यति मत्कान्तं पश्चाद्वेदविदां वरः। यद्यत्पृच्छामि संदेहात्तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१०॥
सभायां जीविते कान्ते तस्य तीव्रस्य संनिधौ। त्वां हि प्रष्टुं न शक्ताऽहं विद्यमाने मदीश्वरे॥११॥
एते ब्रह्मादयो देवा विद्यमानाश्च संसदि। त्वं च वेदविदां श्रेष्ठो न च कश्चिन्मदीश्वरः॥१२॥
नारीं रक्षति भर्ता चेन्न कोऽपि खण्डितुं क्षमः। शास्ति करोति यदि स न कोऽपि रक्षिता भुवि॥१३॥
एवं वेदेषु नो शक्तिः शक्रे वा ब्रह्मरुद्रयोः। स्त्रीपुंभावश्च[1] बोद्धव्यः स्वामी कर्ता च योषिताम्॥१४॥
स्वामी कर्ता च हर्ता च शास्ता पोष्टा च रक्षिता। अभीष्टदेवः पूज्यश्च न गुरुः स्वामिनः परः॥१५॥
कन्या सत्कुलजाता या सा कान्तवशवर्तिनी। या स्वतन्त्रा च सा दुष्टा स्वभावात्कुटिला ध्रुवम्॥१६॥
दुष्टा परपुमांसं च सेवते या नराधमा। सा निन्दति पतिं शश्वदसद्वंशप्रसूतिका॥१७॥
उपबर्हणभार्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च। वधूर्गन्धर्वराजस्य कान्तभक्ता सदा द्विज॥१८॥
सर्वं कालयितुं शक्तस्त्वं च वेदविदां वर। कालं यमं मृत्युकन्यां मदभ्याशं समानय॥१९॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्रो वेदविदां वरः। सभामध्ये समाहूय तान्प्रत्यक्षं चकार ह॥२०॥

मेरे कान्त को जीवित करने के लिए जो प्रतिज्ञा की है, वह सद्वाक्य कभी बदल नहीं सकता। अतः उसी क्षण मुझे विश्वास हो गया कि मेरे पति जीवित हो गए॥९॥ आप वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं। आप मेरे पति को जीवित तो कर ही देंगे, किन्तु सन्देहवश जो-जो बातें मैं अभी आपसे पूछ रही हूं, उन सबको बताने की कृपा करें॥१०॥ क्योंकि पति के जीवित हो जाने पर उनकी उपस्थिति में मैं आपसे कोई बात पूछ नहीं सकूंगी; क्योंकि वे तीक्ष्ण स्वभाव के हैं। यद्यपि इस सभा में ब्रह्मादि देवगण और वेदविदों में श्रेष्ठ आप भी विद्यमान हैं, पर कोई भी मेरा (स्वामी) नहीं है। पति यदि नारी की रक्षा करता है, तो कोई उसका खंडन नहीं कर सकता है। और यदि वह अनुशासन करता या दंड देता है तो भूतल पर उस (स्त्री) की कोई रक्षा भी नहीं कर सकता है॥११-१३॥ इसी प्रकार वेदों इन्द्र, ब्रह्मा और रुद्र में भी (उसके रोकने की) शक्ति नहीं है। स्वामी और स्त्री में पति-पत्नी-भाव-सम्बन्ध जानना चाहिए। स्वामी ही स्त्रियों का कर्ता, हर्ता, शास्ता, पोषक, रक्षक, इष्टदेव तथा पूज्य है। स्त्री के लिए पति से बढ़कर कोई गुरु नहीं है।॥१४-१५॥ उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाली कन्या सदैव अपने पति के अधीन रहती है और जो स्वतन्त्रा है, वह दुष्टा तथा स्वभाव से निश्चित ही कुटिल होती है॥१६॥ जो दुष्टा परपुरुष में रत तथा अधम है, वही अपने पति की निन्दा किया करती है। वह अवश्य ही नीचकुल की कन्या होती है॥१७॥ मैं उपबर्हण की पत्नी और चित्ररथ की कन्या हूँ और हे द्विज ! मैं सदा पतिभक्ता एवं गन्धर्वराज की वधू हूँ॥१८॥ हे वेदविदांवर ! आप सबको यहाँ बुलाने में समर्थ हैं, अतः यम और मृत्यु-कन्या को मेरे समीप बुलाने की कृपा करें॥१९॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ उस विप्र ने मालावती की बात सुनकर सभा के भीतर ही उन सब को बुलाकर उसके सामने प्रत्यक्ष खड़ा कर दिया। सती मालावती ने सर्वप्रथम मृत्युकन्या को

---

[1] क. ०श्च यो ब्रह्मन्स्वा०।

ददर्श मृत्युकन्यां च प्रथमं मालती सती । कृष्णवर्णां घोररूपां रक्ताम्बरधरां वराम् ॥२१॥
सस्मितां षड्भुजां शान्तां दयायुक्तां महासतीम् । कालस्य स्वामिनो वामे चतुःषष्टिसुतान्विताम् ॥२२॥
कालं नारायणांशं च ददर्श पुरतः सती । महोग्ररूपं विकटं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभम् ॥२३॥
षड्वक्त्रं षोडशभुजं चतुर्विंशतिलोचनम् । षट्पादं कृष्णवर्णं च रक्ताम्बरधरं परम् ॥२४॥
देवस्य देवं विकृतं सर्वसंहाररूपिणम् । कालाधिदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम् ॥२५॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यमक्षमालाकरं वरम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥२६॥
सती ददर्श पुरतो व्याधिसंघान्सुदुर्जयान् । वयसाऽतिमहावृद्धान्स्तनंधान्मातृसंनिधौ ॥२७॥
स्थूलपादं कृष्णवर्णं धर्मिष्ठं रविनन्दनम् । जपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥२८॥
धर्माधर्मविचारज्ञं परं धर्मस्वरूपिणम् । पापिनामपि शास्तारं ददर्श पुरतो यमम् ॥२९॥
तांश्च दृष्ट्वा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम् । मालावती महासाध्वी प्रहृष्टवदनेक्षणा ॥३०॥

मालावत्युवाच

हे धर्मराज धर्मिष्ठ धर्मशास्त्रविशारद । कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विभो ॥३१॥

यम उवाच

अप्राप्तकालो म्रियते न कश्चिज्जगतीतले । ईश्वराज्ञां विना साध्वि नामृतं चालयाम्यहम् ॥३२॥

देखा। उसका रंग काला था। वह देखने में भयानक थी। उसने लाल रंग के वस्त्र पहन रखे थे। वह मंद-मंद मुसकरा रही थी। उसके छह भुजायें थीं। वह शान्त, दयालु और महासती थी। वह अपने स्वामी काल के बाँयें भाग में चौंसठ पुत्रों को साथ लिये खड़ी थी ॥२०-२२॥ तदनन्तर मालावती ने अपने सामने स्थित नारायण के अंगभूत काल को भी देखा। वह महान् उग्ररूप, विकट तथा ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के समान चमक रहा था। उसके छह मुख, सोलह भुजाएँ, चौबीस नेत्र, और छह चरण थे। उसका रंग काला था और उसने लाल वस्त्र धारण कर रखे थे। वह देवताओं का भी देवता, विकराल आकृति वाला, सर्वसंहाररूपी, काल का अधिदेवता, सर्वेश्वर एवं सनातन भगवान् है। उसके मुख पर प्रसन्नता तथा मंद मुसकान दिखाई पड़ रही थी। वह हाथ में अक्षमाला धारण करके भगवान् कृष्ण का (नाम) जप रहा था ॥२३-२६॥ अनन्तर उस सती (मालावती) ने अपने सम्मुख अत्यन्त दुर्जेय व्याधि-समूहों को देखा, जो अवस्था में अत्यन्त महावृद्ध, किन्तु माता के समीप स्तनपान करने वाले बच्चे की भाँति दिख रहे थे। फिर मालावती ने सूर्यपुत्र यम को देखा, जो कृष्ण वर्ण तथा स्थूलपाद थे। वे धर्मनिष्ठ सूर्य-पुत्र परब्रह्म स्वरूप सनातन भगवान् श्रीकृष्ण का नाम-जप कर रहे थे। वे धर्माधर्म के विचार के ज्ञाता, श्रेष्ठ धर्म-स्वरूप तथा पापियों के शासक हैं। उन्हें देखकर महासती मालावती ने अपने मुख और नेत्रों से अत्यन्त हर्ष सूचित करती हुई निःशंक होकर सर्वप्रथम यम से पूछा ॥२७-३०॥

मालावती बोली—धर्मशास्त्र-विशारद ! धर्मनिष्ठ ! धर्मराज ! प्रभो ! आप समय का उल्लंघन करके मेरे प्रियतम को कैसे लिये जा रहे हैं ? ॥३१॥

यम बोले—पतिव्रते ! इस भूतल पर बिना समय पूरा हुए तथा ईश्वर की आज्ञा मिले बिना कोई भी मरता नहीं है। और बिना मरे मैं किसी को ले नहीं जाता हूँ ॥३२॥ मैं, काल, मृत्यु-कन्या और समस्त दुर्जेय व्याधि-

अहं कालो मृत्युकन्या व्याधयश्च सुदुर्जयाः । निषेकेण प्राप्तकालं कालयन्तीश्वराज्ञया ॥३३॥
मृत्युकन्या विचारज्ञा यं प्राप्नोति निषेकतः । तमहं कालयाम्येव पृच्छतां केन हेतुना ॥३४॥

मालावत्युवाच

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्वामिवेदनम् । कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रिये ॥३५॥

मृत्युकन्योवाच

पुरा विश्वसृजा सृष्टाऽप्यहमेवात्र कर्मणि । न च क्षमा परित्यक्तुं बहुना तपसा सति ॥३६॥
सती सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्विनी वरा । मामेव भस्मसात्कर्तुं क्षमा यदि भवेद्भुवे ॥३७॥
सर्वापच्छान्तिरेवेह तदा भवति सुन्दरि । पुत्राणां स्वामिनः पश्चाद्भविता यद्भविष्यति ॥३८॥
कालेन प्रेरिताऽहं च मत्पुत्रा व्याधयश्च वै । न मत्सुतानां दोषश्च न च मे शृणु निश्चितम् ॥३९॥
पृच्छ कालं महात्मानं धर्मज्ञं धर्मसंसदि । तदा यदुचितं भद्रे तत्करिष्यसि निश्चितम् ॥४०॥

मालावत्युवाच

हे कालकर्मणां साक्षिन्कर्मरूप[1] सनातन । नारायणांश भगवन्नमस्तुभ्यं पराय च ॥४१॥
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रभो । जानासि सर्वदुःखं च सर्वज्ञस्त्वं कृपानिधे[2] ॥४२॥

गण जन्म के बाद समय आने पर ही जीव को ईश्वर की आज्ञा से ले जाते हैं ॥३३॥ विवेकशील मृत्युकन्या जन्मकाल के बाद जिसके पास पहुँच जाती है, उसे ही मैं ले जाता हूँ। (अतएव उसी से) पूछो कि वह किस कारण जीव के पास जाती है ॥३४॥

मालावती बोली—प्रिय (सखी) मृत्युकन्या! तुम भी स्त्री हो और पति-वियोग की वेदना को जानती हो। तब जीवित रहते हुए मेरे कान्त का अपहरण क्यों कर रही हो? ॥३५॥

मृत्युकन्या बोली—प्राचीन काल में ही विश्वस्रष्टा ब्रह्मा ने मेरी सृष्टि करके इस कर्म में मुझे नियुक्त कर दिया था। पतिव्रते! बहुत तप करने पर भी मैं इस कर्म को छोड़ने में असमर्थ हूँ। यदि संसार में सती स्त्रियों के बीच कोई परमतेजस्विनी स्त्री मुझे भस्म करने में समर्थ हो जाये, तो हे सुन्दरि! इस लोक की समस्त आपत्तियाँ शान्त हो जातीं। पश्चात् मेरे स्वामी और पुत्रों की जो दशा होने को होती, वह हो जाती ॥३६-३८॥ काल से प्रेरित होने पर ही मैं और मेरे पुत्र व्याधिगण यह कार्य करते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि इसमें मेरा और मेरे पुत्रों का कोई दोष नहीं है ॥३९॥ भद्रे! इस धर्मसभा में धर्मज्ञाता एवं महात्मा काल से इस विषय में पूछो। फिर जो उचित होगा वह सुनिश्चित रूप से करना ॥४०॥

मालावती बोली—काल और कर्मों के साक्षी, कर्मरूप, सनातन! भगवन्! आप नारायण के अंश हैं। अतः आप परमश्वर को नमस्कार है ॥४१॥ प्रभो, कृपानिधे! आप सर्वज्ञ हैं। समस्त दुःखों को जानते हैं। इसलिए मेरे जीवित काल में मेरे कान्त का अपहरण आप क्यों कर रहे हैं? ॥४२॥

---

१ क. ०क्षिन्धर्मरू०। २ क ०निधिः।

कालपुरुष उवाच

को वाऽहं को यमः का च मृत्युकन्या च व्याधयः। वयं भ्रमामः सततमीशाज्ञापरिपालकाः ॥४३॥
यस्य सृष्टा च प्रकृतिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सुरा मुनीन्द्रा मनवो मानवाः सर्वजन्तवः ॥४४॥
ध्यायन्ते तत्पदाम्भोजं योगिनश्च विचक्षणाः। जपन्ति शश्वन्नामानि पुण्यानि परमात्मनः ॥४५॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्। स्रष्टा ब्रह्माऽऽज्ञया यस्य पाता विष्णुर्यदाज्ञया ॥४६॥
संहर्ता शंकरः सर्वजगतां यस्य शासनात्। धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याऽऽज्ञापरिपालकः ॥४७॥
राशिचक्रं ग्रहाः सर्वे भ्रमन्ति यस्य शासनात्। दिगीशाश्चैव दिक्पाला यस्याऽऽज्ञापरिपालकाः॥४८॥
यस्याऽऽज्ञया च तरवः पुष्पाणि च फलानि च। बिभ्रत्येव ददत्येव काले मालावति सति ॥४९॥
यस्याऽऽज्ञया जलाधारा सर्वाधारा वसुंधरा। क्षमावती च पृथिवी कम्पिता न भयेन च ॥५०॥
सहसा मोहिता माया मायया यस्य संततम्। सर्वप्रसूर्या प्रकृतिः सा भीता यद्भयादहो ॥५१॥
यस्यान्तं न विदुर्वेदा वस्तूनां भावगा अपि। पुराणानि च सर्वाणि यस्यैव स्तुतिपाठकाः ॥५२॥
यस्य नाम विधिर्विष्णुः सेवते सुमहान्विराट्। षोडशांशो भगवतः स एव तेजसो विभोः ॥५३॥
सर्वेश्वरः[1] कालकालो मृत्योर्मृत्युः परात्परः। सर्वविघ्नविनाशाय तं कृष्णं परिचिन्तय ॥५४॥

कालपुरुष बोले—मैं क्या हूँ? तथा यम, मृत्युकन्या और समस्त व्याधिगण भी किस गिनती में हैं? हम लोग निरन्तर ईश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिये भ्रमण करते हैं ॥४३॥ जिनसे प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि देवगण, मुनिगण, मनुगण, मानवसमूह और समस्त जीवगण उत्पन्न हुए हैं। जिनके चरणकमल का योगीगण सदैव ध्यान करते हैं और बुद्धिमान् पुरुष जिन परमात्मा के पवित्र नामों का निरन्तर जप करते हैं ॥४४-४५॥ जिनके भय से वायु चलता है, सूर्य तपता है और जिनकी आज्ञा से ब्रह्मा सृष्टि करते तथा विष्णु पालन करते हैं। ॥४६॥ जिनके शासन में शंकर समस्त जगत् का संहार करते हैं। जिनकी आज्ञा का पालन करने के नाते धर्म कर्मों के साक्षी कहे जाते हैं। जिनके शासन से राशि-समूह और समस्त ग्रहगण भ्रमण करते हैं। दिशाओं के अधीश्वर दिक्पाल जिनकी आज्ञा का सतत पालन करते हैं ॥४७-४८॥ हे सती मालावती! जिनकी आज्ञा से वृक्ष समय पर फूल और फल धारण करते तथा देते हैं ॥४९॥ जिनकी आज्ञा से यह वसुन्धरा जल और सभी चराचरों का आधार बनी हुई है। जिनके भय से पृथ्वी कभी-कभी सहसा कम्पित हो उठती है ॥५०॥ जिनकी माया से सहसा माया भी मोहित हो जाती है और जिनके भय से सबको जन्म देने वाली प्रकृति भीत होकर कार्य करती रहती है ॥५१॥ समस्त वस्तुओं की सत्ता को बताने वाले वेद भी जिनका अन्त नहीं जानते तथा समस्त पुराण जिनकी स्तुति किया करते हैं ॥५२॥ जिनके नाम का सेवन तेजोमय सर्वव्यापी भगवान् की सोलहवीं कला स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महान् विराट् किया करते हैं ॥५३॥ वे ही सबके अधीश्वर, काल के काल, मृत्यु के मृत्यु और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हैं। अतः समस्त विघ्नों के विनाशार्थ उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण का तुम चिन्तन करो ॥५४॥ वही कृपानिधान तुम्हें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तु तथा पति को भी प्रदान

---

१ क. ०रः सर्वका०।

सर्वाभीष्टं च भर्तारं प्रदास्यति कृपानिधिः । इमे यत्प्रेरिताः सर्वे स दाता सर्वसंपदाम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा कालपुरुषो विरराम च शौनक । कथां कथितुमारेभे पुनरेव तु ब्राह्मणः ॥५६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
मालावतीकालपुरुषसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

इष्टः कालो यमो मृत्युकन्या व्याधिगणा अहो । कस्तेऽधुना च संदेहस्तं पृच्छ कन्यके शुभे ॥१॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा हृष्टा मालावती सती । यन्मनोनिहितं प्रश्नं चकार जगदीश्वरम् ॥२॥

मालावत्युवाच

त्वया यः कथितो व्याधिः प्राणिनां प्राणहारकः । तत्कारणं च विविधं सर्वं[1] वेदे निरूपितम् ॥३॥
यतो न संचरेद्व्याधिर्दुर्निवारोऽशुभावहः । तमुपायं च साकल्यं भवान्वक्तुमिहार्हति ॥४॥

करेंगे। ये सब देवगण उन्हीं के द्वारा प्रेरित होते हैं। इसलिए वही समस्त सम्पत्तियों के दाता हैं ॥५५॥ शौनक! काल पुरुष इतना कहकर चुप हो गए। अनन्तर ब्राह्मण ने पुनः कथा कहना आरम्भ किया ॥५६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में मालावती और कालपुरुष का
संवाद नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १६

ब्राह्मण द्वारा चिकित्सा का वर्णन

ब्राह्मण बोले—बालिके! भद्रे! काल, यम, मृत्युकन्या और समस्त व्याधिगण को तुमने देख लिया। अब इस समय तुम्हें क्या सन्देह है, उसे पूछो ॥१॥ ब्राह्मण की बात सुनकर सती मालावती प्रसन्न हुई और उसने अपना अभीष्ट प्रश्न भगवान् जगदीश्वर से पूछा ॥२॥

मालावती बोली—आपने बताया कि व्याधियाँ प्राणियों के प्राणों का अपहरण करती हैं और उसके अनेक प्रकार के कारण भी वेद में बताये गये हैं ॥३॥ अतः जिस (उपाय) से यह दुर्निवार और अशुभकारी रोगसमूह शरीर में न फैले, उस उपाय को आप विस्तार से बताने की कृपा करें ॥४॥ आप गुरु और दीनों पर दया करने वाले

---

१ ख. ०वें देवनि०।

यद्यत्पृष्टमपृष्टं वा ज्ञातमज्ञातमेव वा । सर्वं कथय तद्भद्रं त्वं गुरुर्दीनवत्सलः ॥५॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । संहितां वक्तुमारेभे संहितार्थं च वैद्यकीम्[1] ॥६॥

ब्राह्मण उवाच

वन्दे तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् । वेदवेदाङ्गबीजस्य बीजं श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥७॥
स ईशश्चतुरो वेदान्ससृजे मङ्गलालयान् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यबीजरूपः सनातनः ॥८॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान्दृष्ट्वा वेदान्प्रजापतिः । विचिन्त्य तेषामर्थं चैवाऽऽयुर्वेदं चकार सः ॥९॥
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः । स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्च चकार सः ॥१०॥
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम् । प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः ॥११॥
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च । व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय ॥१२॥
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशीराजोऽश्विनीसुतौ । नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः ॥१३॥
जाबालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च । एते वेदाङ्गवेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः ॥१४॥
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नामतन्त्रं मनोहरम् । धन्वन्तरिश्च भगवांश्चकार प्रथमे सति ॥१५॥
चिकित्सादर्पणं नाम दिवोदासश्चकार सः । चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशीराजश्चकार सः ॥१६॥

हैं, अतः जो बात मैंने पूछी है या नहीं पूछी है तथा जो ज्ञात है अथवा अज्ञात है, वह सब कल्याण की बात आप मुझे बताइए ॥५॥ ब्राह्मणवेषधारी भगवान् जनार्दन ने मालावती की बात सुनकर 'वैद्यकसंहिता' का वर्णन आरम्भ किया ॥६॥

ब्राह्मण बोले—मैं भगवान् श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ, जो समस्त तत्त्वों के ज्ञाता, समस्त कारणों के कारण तथा वेद-वेदांगों के बीज के भी बीज हैं ॥७॥ समस्त मंगलों के भी मंगलकारी बीजस्वरूप उन सनातन परमेश्वर ने मंगल के आधारभूत चार वेदों को प्रकट किया ॥८॥ उनके नाम हैं—ऋग्, यजु, साम और अथर्व। उन वेदों को देखकर और उनके अर्थों का विचार करके प्रजापति ने आयुर्वेद की रचना की ॥९॥ इस प्रकार पाँचवें वेद की रचना करके परमेश्वर ने सूर्य को प्रदान किया और भास्कर ने उससे एक स्वतन्त्र संहिता की रचना की। अनन्तर उन्होंने अपनी आयुर्वेदसंहिता अपने शिष्यों को पढ़ायी और उन्हें सौंप दी। पश्चात् उन शिष्यों ने भी अनेक संहिताओं का निर्माण किया ॥१०-११॥ साध्वी ! उन विद्वानों तथा उनके बनाये हुए तन्त्रों के नाम, जो रोग-नाशक बीजरूप हैं, मुझसे सुनो ॥१२॥

धन्वन्तरि, दिवोदास, काशिराज, दोनों अश्विनीकुमार, नकुल, सहदेव, यमराज, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, करथ और अगस्त्य—ये सोलह व्यक्ति वेद-वेदांग के तत्त्वों के ज्ञाता तथा रोगों के नाश करने में दक्ष हैं ॥१३-१४॥

सर्वप्रथम भगवान् धन्वन्तरि ने चिकित्सातत्त्वविज्ञान नामक एक मनोहर तन्त्र की रचना की। फिर दिवोदास ने 'चिकित्सादर्पण', काशिराज ने 'चिकित्साकौमुदी' और दोनों अश्विनीकुमारों ने 'चिकित्सासारतन्त्र'

---

१ ख. वैदिकीम्।

चिकित्सासारतन्त्रं च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ । तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः ॥१७॥
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् । ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥१८॥
च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः । चकार जनको योगी वैद्यसंदेहभञ्जनम् ॥१९॥
सर्वसारं चन्द्रसुतो जाबालस्तन्त्रसारकम् । वेदाङ्गसारं तन्त्रं च चकार जाजलिर्मुनिः ॥२०॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् । द्वैधनिर्णयतन्त्रं च चकार कुम्भसंभवः ॥२१॥
चिकित्साशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश । व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च ॥२२॥
मथित्वा [1]ज्ञानमन्त्रेणैवाऽऽयुर्वेदपयोनिधिम् । ततस्तस्मादुदाजह्रुर्नवनीतानि कोविदाः ॥२३॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम् । आयुर्वेदं सर्वबीजं सर्वं जानामि[2] सुन्दरि ॥२४॥
व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥२५॥
आयुर्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थवित् । धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्तितः ॥२६॥
जनकः सर्वरोगाणां दुर्वारो दारुणो ज्वरः । शिवभक्तश्च योगी च निष्ठुरो विकृताकृतिः ॥२७॥
भीमस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥२८॥
मन्दाग्निस्तस्य जनको मन्दाग्नेर्जनकास्त्रयः । पित्तश्लेष्मसमीराश्च प्राणिनां दुःखदायकाः ॥२९॥
वायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च । ज्वरभेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः ॥३०॥

की रचना की, जो भ्रम का निवारक है। उसी भाँति नकुल ने 'वैद्यकसर्वस्व', सहदेव ने 'व्याधिसिन्धुविमर्दन' और यमराज ने 'ज्ञानार्णव' नामक महातन्त्र को बनाया। ॥१५-१८॥ भगवान् च्यवन ऋषि ने 'जीवदान' नामक तन्त्र, योगी जनक ने 'वैद्यसन्देहभञ्जन', चन्द्र-पुत्र बुध ने 'सर्वसार,' जाबाल ने 'तन्त्रसार' और जाजलि मुनि ने 'वेदांगसार' का निर्माण किया। पैल ने 'निदानतन्त्र', करथ ने उत्तम सर्वधर-तंत्र' और अगस्त्य ने 'द्वैधनिर्णयतन्त्र' की रचना की। ये सोलह तन्त्र, चिकित्सा शास्त्र के बीज, व्याधिनाशक हेतु तथा बलवृद्धिकारक हैं॥१९-२२॥ विद्वानों ने आयुर्वेद-सागर को अपने ज्ञानरूपी मथानी से मथ कर उक्त तन्त्रों को नवनीत (मक्खन) के रूप में निकाला है॥२३॥ सुन्दरि ! इनको क्रमशः देखकर तुम भास्कर की दिव्य संहिता और सर्वबीजस्वरूप आयुर्वेद को भलीभाँति जान लोगी॥२४॥ व्याधियों के तत्त्वों का भलीभाँति ज्ञान करना और वेदनाओं का निग्रह करना, यही वैद्यों का वैद्यत्व है। वैद्य आयु प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं॥२५॥ आयुर्वेद के विशेष ज्ञाता, चिकित्साओं के यथार्थवेत्ता, धर्मात्मा और दयालु होने के नाते उन्हें वैद्य कहा जाता है॥२६॥ दारुण ज्वर समस्त रोगों का जनक और दुर्वार (बड़ी कठिनाई से रोका जानेवाला) होता है। वह शिवभक्त, योगी, निष्ठुर और विकृत आकृति का होता है। ॥२७॥ उसके तीन चरण, तीन शिर, छह भुजाएँ और नौ नेत्र हैं। वह भयंकर ज्वर काल, अन्तक और यमराज की भाँति विनाशकारी होता है। उसका अस्त्र भस्म है और देवता रुद्र॥२८॥ वह मन्दाग्नि से उत्पन्न होता है। उस मन्दाग्नि को उत्पन्न करने वाले पित्त, कफ एवं वायु ये तीन हैं, जो प्राणियों को सदैव दुःखी करते रहते हैं॥२९॥ वायु, पित्त और कफ से उत्पन्न होने के नाते ज्वर के तीन भेद हैं—वातज, पित्तज और कफज। एक चौथा ज्वर भी है,

---

१ क. ०मन्थेनैवा०। २ ख. ०नासि सु०।

पाण्डुश्च कामलः कुष्ठः शोथः प्लीहा च शूलकः । ज्वरातिसारग्रहणीकासव्रणहलीमकाः ॥३१॥
मूत्रकृच्छ्रश्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः । विषमेहश्च कुब्जश्च गोदश्च गलगण्डकः ॥३२॥
भ्रमरी संनिपातश्च विषूची दारुणी सति । एषां भेदप्रभेदेन चतुःषष्टी रुजः स्मृताः ॥३३॥
मृत्युकन्यासुताश्चैते जरा तस्याश्च कन्यका । जरा च भ्रातृभिः सार्धं शश्वद्भ्रमति भूतले ॥३४॥
एते चोपायवेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम् । पलायन्ते च तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥३५॥
चक्षुर्जलं च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम् । कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलं च जराव्याधिविनाशनम् ॥३६॥
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वल्पां करोति यः । बालां च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति ॥३७॥
[1]खातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तं च निदाघेऽनिलसेवकम् ॥३८॥
प्रावृष्युष्णोदकस्नायी घनतोयं न सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥३९॥
शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत् । खातस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥४०॥
[2]खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निं च सेवते । भुङ्क्ते नवान्नमुष्णं च जरा तं नोपगच्छति ॥४१॥
शिशिरेंऽशुकवह्निं च न(क) वोष्णान्नं च सेवते । यः कवोष्णोदकस्नायी जरा तं नोपगच्छति ॥४२॥
सद्योमांसं नवान्नं च बाला स्त्री क्षीरभोजनम् । घृतं च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति ॥४३॥

जिसे त्रिदोषज कहते हैं ॥३०॥ पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूल, ज्वरातिसार, ग्रहणी, कास (खाँसी), व्रण (फोड़ा), हलीमक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार या रक्तदोष से उत्पन्न होनेवाला गुल्म, विषमेह, कुब्ज, गोद, गलगण्ड (घेघा), भ्रमरी, सन्निपात, विषूची (हैजा) और दारुणी रोगों के नाम हैं। इन्हीं के भेद और प्रभेदों से रोग के चौंसठ भेद कहे गये हैं ॥३१-३३॥ ये सभी मृत्युकन्या के पुत्र हैं और जरा उसकी कन्या है। जरा अपने भाइयों के साथ निरन्तर भूतल पर भ्रमण किया करती है ॥३४॥ संयमी और उपायवेत्ता जन के समीप ये रोग नहीं जाते हैं। उसे देखते ही उसी प्रकार भाग जाते हैं जैसे गरुड़ को देखकर साँप ॥३५॥ नेत्र को जल से साफ करना, व्यायाम, चरणतल में तेल मलना दोनों कान और शिर पर तेल डालना—यह प्रयोग जरा-व्याधि का नाशक है ॥३६॥ वसन्त काल में भ्रमण, स्वल्प अग्निसेवन और समय पर बालास्त्री-सेवन करने वाले के समीप जरा कभी नहीं जाती है ॥३७॥ ग्रीष्म काल में तालाब आदि के शीतोदक से स्नान, चन्दन-लेप और वायुसेवन करने वाले के समीप जरा नहीं जाती है ॥३८॥ वर्षाकाल में उष्णोदक (गरमजल) से स्नान, वर्षाजल का असेवन, और समय पर परिमित आहार करने वाले के समीप जरा नहीं जाती है। शरत् काल में धूप-सेवन न करने, भ्रमण न करने, तालाब आदि में स्नान करने और परिमित भोजन करने से जरा पास नहीं फटकती है ॥३९-४०॥ हेमन्त काल में प्रातः स्नान, समय पर अग्निसेवन तथा किंचित् गरम और नवान्न भोजन करने वाले के समीप जरा नहीं जाती है ॥४१॥ शिशिरकाल में गरम कपड़े, प्रज्वलित अग्नि तथा गरम अन्न का सेवन और उष्णोदक से स्नान करने वाले के पास जरा नहीं पहुँचती है ॥४२॥ तुरन्त का मांस, नवान्न, षोडशी स्त्री, क्षीर भोजन और घृत के सेवन करने वाले को जरा नहीं होती है ॥४३॥ क्षुधा लगने पर उत्तम अन्न का भक्षण, प्यास लगने पर जलपान और नित्य

---

१ ख. प्रातः शी० । २ ख. प्रातः स्ना० ।

भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलम् । नित्यं भुङ्क्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥४४॥
दधि हैयङ्गवीनं च नवनीतं तथा गुडम् । नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति ॥४५॥
शुष्कमांसं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि । संसेवन्तं जरा याति प्रहृष्टा भ्रातृभिः सह ॥४६॥
रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वलाः । तानुपैति जरा हृष्टा भ्रातृभिः सह सुन्दरि ॥४७॥
रजस्वला च कुलटा चावीरा जारदूतिका । शूद्रयाजकपत्नी या ऋतुहीना च या सति ॥४८॥
यो हि तासामन्नभोजी ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः । तेन पापेन सार्धं सा जरा तमुपगच्छति ॥४९॥
पापानां व्याधिभिः सार्धं मित्रता संततं ध्रुवम् । पापं व्याधिजराबीजं विघ्नबीजं च निश्चितम् ॥५०॥
पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा । पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयं कलिः ॥५१॥
तस्मात्पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम् । भारते सततं सन्तो नाऽऽचरन्ति भयातुराः ॥५२॥
स्वधर्माचारयुक्तं च दीक्षितं हरिसेवकम् । गुरुदेवातिथीनां च भक्तं सक्तं तपःसु च ॥५३॥
व्रतोपवासयुक्तं च सदा तीर्थनिषेवकम् । रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥५४॥
एतान्जरा न सेवेत व्याधिसंघश्च दुर्जयः । सर्वं बोध्यमसमये काले सर्वं[1] ग्रसिष्यति ॥५५॥
ज्वरश्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति । पित्तश्लेष्मसमीराश्च ज्वरस्य जनकास्त्रयः ॥५६॥

ताम्बूल सेवन करने वाले को जरा नहीं होती है ॥४४॥ जो व्यक्ति संयमपूर्वक नित्य दही, मक्खन, घी और गुड़ का सेवन करता है उसके समीप जरा नहीं जाती है ॥४५॥ शुष्क मांस, वृद्धा स्त्री, कन्याराशिगत सूर्य की रश्मि (अर्थात् क्वार-कार्तिक मास की धूप) तथा कई दिन का पुराना दही सेवन करने वाले को जरा प्रसन्नता से अपने भाइयों समेत पहुँच कर अपने अधीन कर लेती है ॥४६॥ सुन्दरि ! रात्रि में दही, व्यभिचारिणी और रजस्वला स्त्री का सेवन करने वाले के समीप जरा, अत्यन्त प्रसन्न होकर भाइयों समेत पहुँच जाती है ॥४७॥ रजस्वला, कुलटा, (पति-पुत्र रहित) विधवा, जार के लिए दूती का काम करने वाली, शूद्रों को यज्ञ कराने वाले की पत्नी तथा मासिकधर्म से रहित स्त्रियों के अन्न का भोजन करने से ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है और उस पाप के साथ उसे जरा भी प्राप्त होती है ॥४८-४९॥ पापों की व्याधियों के साथ सदा अटूट मित्रता होती है। पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है ॥५०॥ पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दीनता, दुःख और भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है ॥५१॥ इसलिए पाप महावैरी, दोषों का कारण और अमंगल रूप है। इस कारण भारत में सन्त लोग सदा भयभीत हो कभी पाप का आचरण नहीं करते हैं ॥५२॥ अपने धर्म का आचरण करने वाले, दीक्षायुक्त, भगवान् के सेवक, गुरु, देव और अतिथियों के भक्त, तप में लीन रहने लाले, व्रत और उपवास करने वाले तथा निरन्तर तीर्थ सेवन करने वाले को देखकर रोगगण उसी तरह भाग जाते हैं जैसे गरुड़ को देखकर साँप (भाग जाते हैं) ॥५३-५४॥ उस पर जरा और दुर्जेय व्याधियाँ भी आक्रमण नहीं करती हैं। अतः ये सब जानने के योग्य हैं। न जानने से असमय में ही ये ग्रसित कर लेते हैं ॥५५॥ पतिव्रते ! ज्वर समस्त रोगों का जनक है—यह बताया जा चुका है। और उस ज्वर को उत्पन्न करने वाले वात, पित्त और कफ—

---

[1] क. ०र्वं गमिष्य०।

एते यथा संचरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु । तमेव विविधोपायं साध्वि मत्तो निशामय ।।५७।।
क्षुधि जाज्वल्यमानायामाहाराभाव एव च । प्राणिनां जायते पित्तं चक्रे च मणिपूरके ।।५८।।
तालबिल्वफलं भुक्त्वा जलपानं च तत्क्षणम् । तदेव तु भवेत्पित्तं सद्यः प्राणहरं परम् ।।५९।।
तप्तोदकं च शिरसि (शिशिरे) भाद्रे तिक्तं विशेषतः । दैवग्रस्तश्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते ।।६०।।
सशर्करं च धान्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम् । चणकं सर्वगव्यं च दधितक्रविवर्जितम् ।।६१।।
बिल्वतालफलं पक्वं सर्वभैक्षवमेव च । आर्द्रकं [1]मुद्गसूपं च तिलपिष्टं सशर्करम् ।।६२।।
पित्तक्षयकरं सद्यो बलपुष्टिप्रदं परम् । पित्तनाशं च तद्बीजमुक्तमन्यन्निबोध मे ।।६३।।
भोजनानन्तरं स्नानं जलपानं विना तृषा । तिलतैलं स्निग्धतैलं स्निग्धमामलकीद्रवम् ।।६४।।
पर्युषितान्नं तक्रं च पक्वं रम्भाफलं दधि । मेघाम्बु शर्करातोयं सुस्निग्धजलसेवनम् ।।६५।।
नारिकेलोदकं रूक्षस्नानं पर्युषितं जलम् । तरुमुञ्जापक्वफलं सुपक्वं कर्कटीफलम् ।।६६।।
खातस्नानं च वर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम् । ब्रह्मरन्ध्रे च तज्जन्म महद्वीर्यविनाशनम् ।।६७।।
वह्निस्वेदं 'भ्रष्टभङ्गं पक्वतैलविशेषकम् । भ्रमणं शुष्कभक्षं च शुष्कपक्वहरीतकी ।।६८।।

ये तीन हैं।।५६।। ये जिस प्रकार देहधारियों में संचार करते और स्वयं पहुँचते हैं, उसके अनेक कारणों तथा उपायों को मुझसे सुनो।।।५७।।

अत्यन्त क्षुधा लगने पर भोजन न करने से प्राणियों के मणिपूरक चक्र में पित्त की उत्पत्ति होती है।।५८।। ताड़ और बेल खाकर तुरन्त जल पी लेने से वह उसी क्षण प्राणहारी पित्त हो जाता है।।५९।। जो दैव का मारा हुआ पुरुष भादों में तपा हुआ जल सिर पर डालता है तथा विशेष रूप से तिक्त भोजन करता है उसका पित्त बढ़ जाता है।।६०।। अतः धनियाँ पीसकर शक्कर समेत शीतल जल में पीने से पित्त की शान्ति होती है। चना, गव्य पदार्थ (दूध, दही, घृत गोबर और मूत्र) तक्ररहित दही, पके हुए बेल और ताड़ के फल, ईख के रस से बनी हुई सब वस्तुएँ, अदरक, मूली, मूंग की दाल, शक्कर समेत तिल का चूर्ण—इन वस्तुओं के भक्षण करने से उसी क्षण पित्त नष्ट हो जाता है और अत्यन्त बल एवं पुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार पित्त का कारण और उसके नाश का उपाय बता दिया। अब अन्य बातें बता रहा हूँ, सुनो! भोजन के अनन्तर (तुरंत) स्नान करना, बिना प्यास के जल पीना, तिल का तेल, स्निग्ध तेल, आँवले का रस, बासी अन्न, मट्ठा, पका केला, दही, वर्षा का जल, शक्कर का शर्बत, अत्यन्त स्निग्ध जल का सेवन, नारियल का जल, वासी जल, रूखा स्नान, तरबूज के पके फल, पकी हुई ककड़ी और वर्षा ऋतु में तालाब में नहाना और मूली खाना—इन सबसे कफ उत्पन्न हो जाता है। वह ब्रह्मरन्ध्र में उत्पन्न होकर वीर्य का महान् विनाश करता है।।६१-६७।। गन्धर्वपुत्री! अग्नि ताप कर स्वेद (पसीना), भूनी हुई भांग का सेवन करना, पका तेल, भ्रमण, शुष्क भोजन, सूखी और पकी हर्रे, कच्चा पिण्डारक (कच्चा लोहबान), कच्चा केला, वेसवार (मसाला) सिंधुवार (निर्गुंडी),

---

१ ख. ०द्वयूषं च।

पिण्डारकमपक्वं च रम्भाफलमपक्वकम् । वेसवारः सिन्धुवार[1] अनाहारमपानकम् ।।६९।।
सघृतं रोचनाचूर्णं सघृतं शुष्कशर्करम् । मरीचं पिप्पलं शुष्कमार्द्रकं [2]जीवकं मधु ।।७०।।
द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि सद्यः श्लेष्महराणि च । बलपुष्टिकराण्येव वायुबीजं निशामय ।।७१।।
भोजनानन्तरं सद्यो गमनं धावनं तथा । छेदनं वह्नितापश्च शश्वद्भ्रमणमैथुनम् (ने) ।।७२।।
वृद्धस्त्रीगमनं चैव मनःसंताप एव च । अतिरूक्षमनाहारं युद्धं कलहमेव च ।।७३।।
कटुवाक्यं भयं शोकः केवलं वायुकारणम् । आज्ञाख्यचक्रे तज्जन्म निशामय तदौषधम् ।।७४।।
पक्वं रम्भाफलं चैव सबीजं शर्करोदकम् । नारिकेलोदकं चैव सद्यस्तक्रं सुपिष्टकम् ।।७५।।
माहिषं दधि मिष्टं च केवलं वा सशर्करम् । सद्यः पर्युषितान्नं च सौवीरं शीतलोदकम् ।।७६।।
पक्वतैलविशेषं च तिलतैलं च केवलम् । लाङ्गली तालखर्जूरमुष्णमामलकीद्रवम्[3] ।।७७।।
शीतलोष्णोदकस्नानं सुस्निग्धं चन्दनद्रवम् । स्निग्धपद्मपत्रतल्पं सुस्निग्धव्यजनानि च ।।७८।।
एतत्ते कथितं वत्से सद्यो वायुप्रणाशनम् । वायवस्त्रिविधाः पुंसां क्लेशसंतापकामजाः ।।७९।।
व्याधिसंघश्च कथितस्तन्त्राणि विविधानि च । तानि व्याधिप्रणाशाय कृतानि सद्भिरेव च ।।८०।।
तन्त्राण्येतानि सर्वाणि व्याधिक्षयकराणि च । रसायनाद्यो येषु चोपायाश्च सुदुर्लभाः ।।८१।।
न शक्तः कथितुं साध्वि यथार्थं वत्सरेण च । तेषां च सर्वतन्त्राणां कृतानां च विचक्षणैः ।।८२।।

उपवास, जल न पीना, घी मिला रोचनाचूर्ण, घी मिला सूखा शक्कर, मरिच, पीपर, सूखा अदरक, जीवक (अष्टवर्ग में से एक औषध) और मधु––इतने पदार्थ तुरन्त कफ का नाश करते हैं और निश्चित रूप से बल-पुष्टि प्रदान करते हैं। अब वायु का कारण सुनो ।।६८-७१।। भोजनान्तर तुरन्त चलना, दौड़ना, काटना, अग्नि-सेवन, निरन्तर भ्रमण और मैथुन, वृद्धा स्त्री का उपभोग, मन में सन्ताप रहना, अत्यन्त रूखा खाना, अनाहार, युद्ध करना, कलह करना, कटुवाक्य बोलना भय और शोक से अभिभूत होना––ये सब वायु की उत्पत्ति के कारण हैं। इसकी उत्पत्ति आज्ञा नामक चक्र में होती है। उसके औषध को भी बता रहा हूँ, सुनो। ।।७२-७४।। केले का पका फल, विजौरा नीबू के साथ चीनी का शर्बत, नारियल का जल, तुरन्त का मट्ठा, उत्तम पीठी (पूआ), कचौरी आदि, भैंस का मीठा दही या उसमें शक्कर मिला हो, तुरंत का बासी अन्न जौ की काँजी, शीतल जल, पका तेल, अथवा केवल तिल का तेल, नारियल, ताड़, खजूर, आँवले का उष्ण द्रव, ठंडे-गरम जल का स्नान, अत्यन्त स्निग्ध चन्दन-रस तथा चिकने कमल पत्तों की शय्या,––ये सब वस्तुएँ एवं अत्यन्त स्निग्ध व्यजन उसी क्षण वायु का नाश कर देती है। वत्से! इस प्रकार मैंने वायुनाशक वस्तुओं का वर्णन कर दिया। मनुष्यों में क्लेश, सन्ताप और काम से उत्पन्न होने वाले वायु-दोष तीन प्रकार के होते हैं।।७५-७९।। इस प्रकार मैंने व्याधि-समूह और उनके नाश के लिए विद्वानों द्वारा बनाये गये नाना प्रकार के तन्त्र भी बता दिये हैं।।८०।। ये सभी तन्त्र व्याधिनाशक हैं, जिनमें रसायन आदि अत्यन्त दुर्लभ उपाय बताये गये हैं।।८१।। पतिव्रते! विद्वानों द्वारा सुरचित उन तन्त्रों

---

१ क. ०रमना०। २ क. जीरकं म०। ३ क. ०मुस्तमा०।

केन रोगेण त्वत्कान्तो मृतः कथय शोभने । तदुपायं करिष्यामि येन जीवेदयं सति ॥८३॥

सौतिरुवाच

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा कन्या चित्ररथस्य च । कथां कथितुमारेभे सा गान्धर्वी प्रहर्षिता ॥८४॥

मालावत्युवाच

योगेन प्राणांस्तत्याज ब्रह्मणः शापहेतुना । सभायां लज्जितः कान्तो मम विप्र निशामय ॥८५॥
सर्वं श्रुतमपूर्वं च शुभाख्यानं मनोहरम् । भवेद्भवे कुतः केषां महल्लभ्यं विपद्विना ॥८६॥
अधुना [1]मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण । नत्वा वः स्वामिना सार्धं यास्यामि स्वगृहं प्रति ॥८७॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । सभां जगाम देवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिकात् ॥८८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
चिकित्साप्रणयने षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

का यथावत् वर्णन एक वर्ष में भी नहीं किया जा सकता ॥८२॥ अतः हे शोभने ! तुम्हारा कान्त किस रोग से मृतक हुआ है वह बताओ। मैं उसका उपाय करूँगा, जिससे यह जीवित हो जायेगा ॥८३॥

सौति बोले—ब्राह्मण की बातें सुनकर चित्ररथ की कन्या गान्धर्वी (मालावती) ने अत्यन्त हर्षित होकर कथा कहना आरम्भ किया ॥८४॥

मालावती बोली—हे विप्र ! सुनिए। मेरे कान्त ने सभा में लज्जित होकर ब्रह्मा के शापवश योग द्वारा अपने प्राण का परित्याग किया है। मैंने आपके मुख से मनोहर, अपूर्व एवं शुभ आख्यान को सुना है। इस जगत् में बिना विपत्ति के कब किसको, कहाँ आप जैसे महात्माओं का संग प्राप्त हुआ है ? ॥८५-८६॥ विद्वन् ! इस समय मेरे प्राणपति को मुझे देने की कृपा करें, जिससे मैं अपने स्वामी के साथ आप सबको नमस्कार करके अपने घर को चली जाऊँ ॥८७॥ मालावती की यह बात सुनकर ब्राह्मणवेषधारी भगवान् जनार्दन उसके समीप से उठकर शीघ्र देवों की सभा में चले गये ॥८८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में मालावती-विष्णु-संवाद-विषयक
चिकित्सा-प्रणयन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

---

१ क. मत्प्रभोः प्राणदानं देहि वि०।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

दृष्ट्वा द्विजं देवसंघः प्रत्युत्थानं चकार च । परस्परं च संभाषा बभूव तत्र संसदि ॥१॥
मा तं बुबुधिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम् । पौर्वापर्य विस्मृताश्च मोहिता विष्णुमायया ॥२॥
सुरान्संबोध्य विप्रश्च वाचा मधुरया द्विज । उवाच सत्यं परमं प्राणिनां यच्छुभावहम् ॥३॥

ब्राह्मण उवाच

उपबर्हणभार्येयं कन्या चित्ररथस्य च । ययाचे जीवदानं च स्वामिनः शोककर्षिता ॥४॥
अधुना किमनुष्ठानमस्य कार्यस्य निश्चितम् । तन्मां ब्रूत सुराः सर्वे नित्यं यत्समयोचितम् ॥५॥
शप्तुकामा सुरान्सर्वान्साध्वी तेजस्विनी वरा । अहं क्षेमाय युष्माकमागतो बोधिता सती ॥६॥
स्तुतिः कृता च युष्माभिः श्वेतद्वीपे हरेरपि । युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नाऽऽगतः ॥७॥
बभूवाऽऽकाशवाणीति पश्चाद्यास्यति[1] केशवः । विपरीतं कथं भूतं वाणीवाक्यमचञ्चलम् ॥८॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः । उवाच वचनं सत्यं हितं परममङ्गलम् ॥९॥

अध्याय १७

विप्र-बालक के साथ ब्रह्मा आदि का वार्तालाप

सौति बोले—देवसमूह ने ब्राह्मण को देख कर उठकर स्वागत किया और सभा में उन सब की परस्पर बातचीत हुई ॥१॥ विष्णु की माया से मोहित होने के नाते देवगण पूर्वापर की सारी बातें भूल गये थे, इसीलिए विप्रवेषधारी भगवान् श्रीहरि को वे उस समय पहचान न सके ॥२॥ द्विज ! उस समय ब्राह्मण ने देवताओं को सम्बोधित करके मधुर वाणी में कहना आरम्भ किया, जो परम सत्य और प्राणियों के लिए कल्याणकारक था ॥३॥

ब्राह्मण बोले—उपबर्हण की यह भार्या, जो चित्ररथ की कन्या है, शोकाकुल होकर अपने स्वामी के जीवदान की याचना कर रही है ॥४॥ आप सब देववृन्द मुझे बतायें कि इस कार्य के लिए निश्चित रूप से किस उपाय को अपनाया जाय, जो सदा काम में लाने योग्य और समयोचित हो ॥५॥ वह तेजस्विनी एवं श्रेष्ठ साध्वी सभी देवों को शाप देने के लिए तैयार थी किन्तु आप लोगों के कल्याणार्थ मैंने यहाँ आकर उसे समझा-बुझा दिया है ॥६॥ आप लोगों ने श्वेत द्वीप में जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति की थी, किन्तु वे आप के ईश विष्णु यहाँ क्यों नहीं आये ? ॥७॥ आकाशवाणी हुई थी कि 'पश्चात् भगवान् केशव भी जायेंगे'। आकाशवाणी का वह अटल वाक्य विपरीत (मिथ्या) कैसे हो गया ? ॥८॥ ब्राह्मण की बात सुनकर जगद्गुरु ब्रह्मा ने सत्य, हितकर एवं परममंगलमय बात कही ॥९॥

---

१ क. ०ति निश्चितम्।